[श्री द्वा. ग्र. माला – पुष्प २३]

" छीत–स्वामी "

[जीवनी तथा पद–संग्रह]

सम्पादक :—

गो. श्री व्रजभूषण शर्मा

पो. श्री कण्ठमणि शास्त्री

क. श्री गोकुलानन्द शर्मा

प्रकाशक :—

विद्या–विभाग

[अष्टछाप–स्मारक–समिति]

कांकरोली

विषय-सूची

*

—: इति :—

सम्पादकीय

※

अष्टछाप – साहित्य – प्रकाशन की परम्परा में आज ' छीत – स्वामी ' [पद–संग्रह] और भी सन्निविष्ट करने का सौभाग्य अधिगत हुआ है। इसके पूर्व ' विद्याविभाग ' काङ्करोली द्वारा सं २००८ में ' गोविन्द-स्वामी ' एवं सं २०१० में ' कुंभनदास ' हिन्दी–साहित्यिक जगत् के अभिमुख उपस्थित किये जा चुके हैं।

यह एक हर्षद प्रसंग है कि–हिन्दीसाहित्य ने उक्त संग्रहों को आदर श्रद्धा की दृष्टि से अपनाया है। भविष्य में अष्टछाप के अन्यतम भक्त कवि चतुर्भुजदास–कृत पद–संग्रह के प्रकाशनानन्तर महनीय, महत्पदों के संग्रहीय मुद्रण में परमानन्द–कृत ' परमानन्द–सागर ' और कृष्णदास कृत-पद-संग्रह (कृष्णसागर) ही अवशिष्ट रह जाते हैं। यद्यपि प्रयाग–विश्वविद्यालय द्वारा ' नन्ददास–ग्रन्थावली ' में नन्ददास रचित गेय पदों का प्रकाशन किया गया है, तथापि उसमें न तो तत्कृत सभी पदों का प्रामाणिकतापूर्वक समावेश ही हो पाया है, और न वर्गीकरण। फिर भी किसी रूप में उनका साहित्य सम्मुख आया है–जो अभिनन्दनीय है।

प्रस्तुत पद्–संग्रह के सम्पादनार्थ विद्याविभागीय संग्रहालय (सरस्वती–भंडार) में अन्य कवियों की भाँति ' छीत–स्वामि ' कृत पदों का कोई एकत्रित, प्रामाणिक, शुद्ध सुंदर, संग्रह समुपलब्ध नहीं हुआ जिससे पदों के संकलन, प्रतिलिपीकरण तथा सम्पादन में एक असुविधा का अनुभव हुआ था, तथापि विभिन्न प्रतियों के आधार पर सर्वसमन्वय–पद्धति से विकीर्ण पदों का शुद्ध पाठ निर्धारित किया गया है। गुर्जरभाषा–भाषी व्यवसायी, पद–संग्रहों के प्रकाशकों की मुद्रित प्रतियों का सहारा लेना तो निरर्थक ही है। अधिकांश हिन्दी–साहित्य के विद्वान् जो–इस ओर प्रयास करते हैं इस दिशा में इसी कारण भटक जाते हैं। उनके सम्मुख शुद्ध वास्तविक कृति नहीं आ पाती। उनका बड़ा–सा प्रयत्न भी कृताकृत हो जाता है।

यों तो प्रस्तुत पद–रचना, काव्य–शैली में इतनी सर्वोत्कृष्ट नहीं है, जितनी अष्टछापी अन्य कवियों की। और इस दृष्टि से भावाभिव्यक्ति की ओर लक्ष्य दिये विना हम उसे ' कनिष्ठिकाधिष्ठित ' कह सकते हैं, तथापि

आलोचना की तरग में प्रस्तुत गेय पद-साहित्य को निम्न स्तर का भी उद्घोषित नहीं किया जा सकता, यह निर्विवाद है। 'छीत-स्वामी' कवि-हृदय लेकर कीर्तन-कुसुमों का चयन करते हैं, संगीत के ताल-लय-स्वर-सूत्र में उन्हें गूथते हैं, और भक्त-मानस की लीलानुभूति में उन्मुक्त रूप से प्रवाहित कर रस-सागर में उन्हें समर्पित कर देते हैं-यह नि सशय कहा जा सकता है।

अष्टछाप-साहित्य के आर्थिक अध्ययन में इस सत्य का अपलाप नहीं किया जा सकता कि- इन पद-रचनाओं में वर्ण्य विषयों की पुनरुक्तियॉ नहीं है ? एक ही भाव को लेकर शब्दान्तरों एव रूपान्तरों में पदों का ग्रथन नहीं हुआ है ? तदपि प्रत्येक समर्थ कवि के पद में एक मौलिक आत्मीयता परिलक्षित नहीं होती- यह भी नहीं कहा जा सकता। पुनरुक्ति, भावसाम्य, तथा च रूपान्तर से गेय पदों के निर्माण का कारण प्रतिदिन की सामयिक सेवा-पद्धति है, जिस में एक ही वर्ण्य विषय को लेकर नित्य-कीर्तन करने की परिपाटी है। अष्टछाप के सभी कवि स्वनिर्धारित अवसर पर कीर्तन-सेवा द्वारा अपनी काव्य-माधुरी को सफल और आत्मा को पावन करते थे, पद-पद की मूर्च्छना में उन्हें दिव्य आनन्द का आस्वाद आता था। इष्ट के सन्निधान कीर्तन करने के लिये धारावाहिक सगीतमय काव्य का सस्तवन ही उनका परम चरम लक्ष्य था। मानव-मानस की सतुष्टि से यश-उपार्जन की अपेक्षा प्रभु के रिझान की ओर उनकी साहजिक प्रवृत्ति थी। अत. ऐसे भक्त कवियों से किसी वद्ध शैली में काव्य-प्रणयन की आशा रखना अस्थाने ही है। अन्ततो गत्वा यह रचना मुक्तक काव्य ही तो है।

यह एक साहित्यिक अभिनव आश्चर्य, विशद वैदुष्य एव रमणीय रससिद्धता ही है कि- अष्टछापी साहित्य में किन्ही पदों में भाव-साम्य, शाब्दिक समानता अधिगत होते हुए भी उनका गठन शिथिलता, शैली अनियमितता, शब्दशैथ्या, कठोरता एव भावाभिव्यञ्जना अपरिपुष्टता आदि दोषों से सम्पृक्त नहीं हो पाई। सक्षेपत :- यह स्पष्ट रूप में निर्देशित किया जा सकता है कि- नित्य नवीन पदों की रचना तात्कालिक होती थी, कीर्तन के समकाल किम्वा अनन्तर ही उनका लेखन होता था। साधारण कवियों की भाति लेखन-सशोधन पूर्वक उन्हें काव्य-सगीत की मचिका में

ढाला नहीं जाता था। ऐसी परिस्थिति से न जाने कितने पदो की शब्द-राशि अनन्त आकाश में विलीन हो गई? लेखनी की नोक पर न चढ सकी। बहुत-सा साहित्य उस समय मूर्तिमान होते हुए भी सम्प्रति अमूर्त हो गया है।

अष्टछाप के भावनाशील कवियों में 'वाचमर्थोनुधावति' वाली एक मौलिक विशेषता थी। वे सर्वशब्दार्थ-वाचक श्रीहरि को लक्ष्य कर पद-रचना करते थे। 'अर्थंवागनुवर्तते' के चक्कर में नहीं थे+। अत उनकी रचना किसी रूप में पुनरुक्त होते हुए भी नित्य नूतन थी, यह स्पष्ट है।

जैसा कि-प्रथम कहा गया है-छीतस्वामि-कृत पदों का कोई प्रामाणिक प्राचीन एकत्रित शुद्ध सग्रह हमें उपलब्ध नहीं हो पाया। एतावता हस्त-लिखित वर्षोत्सव, नित्य-कीर्तन, वधाई, विनति और आश्रय, वसत, होरी, धमार आदि के पद-सग्रहों से उनका चयन किया जाकर प्रस्तुत प्रकाशन में उनका सकलन और सम्पादन हुआ है। विद्या-विभाग काकरोली के सग्रहालय-सरस्वतीभडार-में जिन प्रतियो द्वारा इन पदों का संचय किया गया है- उनमें निम्न लिखित प्रतियॉ प्रधान हैं --

हिन्दी-विभाग

(१) बध सं १ पु १। (२) ,, ,, ५ पु १।
(३) ,, ,, ६ पु १। (४) ,, ,, २३ पु १।

उक्त प्रतियो में संख्या ३ से विशेष साहाय्य के अतिरिक्त गुजरात के कई प्राचीन मदिरो में विद्यमान हस्तलिखित प्रतियो से भी पदों का मिलान किया गया है। यद्यपि विभिन्न हस्त लिखित अथच मुद्रित प्रतियों से सम्वादित करने पर भी कहीं २ उपयुक्त शुद्ध पाठ नहीं मिल पाया है-और अर्थ की संगति भी नहीं लग पाई है तदर्थ सशयवाची (?) चिन्ह का प्रयोग करना पडा है, तथापि 'यावद्बुद्धिबलोदय' पदों को प्रामाणिक रूप में व्यवस्थित कर संग्रह को सुन्दर बनाने की चेष्टा की गई है।

अष्टछाप-साहित्य सम्बन्धी प्रकाशन में सम्पादक-मण्डल की निर्धारित पद्धति के अनुसार 'छीतस्वामि-रचित पदों को भी त्रिधा विभक्त किया गया है। जो इस प्रकार हैं :--

---

+ "लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥"

(१) वर्षोत्सव पद-सग्रह । इस विभाग में जन्माष्टमी से लेकर रक्षाबधन पर्यन्त निश्चित पद्धति से गाये जानेवाले पदों का समावेश है। प्रस्तुत विभाग में जिन अवान्तर विषयों का निर्वाचन किया गया है-उन्हें विषयानुक्रमणिका में देखा जा सकता है। प्रस्तुत विभाग के पदों की सख्या ६७ है।

छीत-स्वामी ने स्वकीय गुरुवर्य प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजी के सम्बन्ध में अनेकों पदों की रचना की है। वर्षोत्सव और प्रकीर्ण दोनों में मिलाकर [४५+१२] =५७ हैं। इनमें श्रीगुसाईंजी के उत्सव [पौष कृ ९] पर वधाई में गाये जाने वाले पदों को वर्षोत्सव-विभाग में सकलित किया गया हैं।

श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु-सम्बन्धी समस्त पद विनति एव आश्रय माहात्म्य से सम्बन्धित होने के कारण प्रकीर्ण-विभाग में रक्खे गये हैं। यह एक उलझी हुई-सी पहेली है कि- छीतस्वामी का कोई भी पद महाप्रभु की वधाई रूप में नहीं मिलता।

(२) लीला पद-सग्रह। इस विभाग में भगवत्सम्बन्धी कतिपय लीलाओं के पद हैं, जो नित्य-कीर्तन रूप में निर्दिष्ट समय पर गाये जाते हैं। सूची से इनके आन्तर विषयों का परिचय मिल सकता है। ऐसे पदों की सख्या १०६ है।

(३) प्रकीर्ण पद-सग्रह। इस विभाग में अवशिष्ट फुटकर पदों का सग्रह है। जो विनति, आश्रय, माहात्म्य आदि से सम्बन्धित हैं। इन पदों की सख्या २८ है।

इस प्रकार प्रस्तुत पद सग्रह में-छीत-स्वामि-कृत २०१ पदों का समावेश होता है। अष्टछापी कवियों में यही एक ऐसे कवि हैं, जिनकी रचना इतने स्वल्प रूप में मिलती है। किसी अज्ञात सग्रहालय में कुछ और भी पद मिल सके 'अन्यदेतत्'। हां- ऐसे पदों को जो अन्यदीय रचना में उपलब्ध होते थे, विश्लेषण एव वर्गीकरण द्वारा प्रथक् कर लिया गया है। गोविन्दस्वामी, और कुमनदास के पदों की भांति छीतस्वामी के यह पद भी उनकी विशुद्ध सम्पत्ति हैं यह निसशय कहा जा सकता है।

व्रजभाषा के शब्दों की मौलिक अवस्थिति के सम्बन्ध [इदमित्थता] में अद्यावधि कोई एक सर्वमान्य सिद्धान्त चालू नहीं हो पाया है। 'प्रयाग विश्व विद्यालय' के हिन्दीविभागाध्यक्ष माननीय सुहृदवर डा श्रीधीरेन्द्र

वर्मा द्वारा परिप्रेषित 'ब्रजभाषा' नामक ग्रन्थ अभी कुछ समय पूर्व मुझे प्राप्त हुआ था। उक्त ग्रन्थ में ब्रजभाषा के तत्वज्ञ विद्वान् वर्माजी ने धीर गंभीर व्यापक दृष्टि से ब्रजभाषा-व्याकरण की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है- जो अधिकाश व्यापक है। उसमें शब्दो और मात्राओं के अधिकांश प्रचलित सभी रूपों को स्वीकार कर एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाया गया है- जो स्तुत्य है।

ब्रजभाषा के व्यापक विस्तार को देखते हुए, उसमें किसी एकपक्षीय सिद्धान्त को लादना उचित भी नहीं है। ब्रज के शब्दों का रूप जहां शुद्ध ब्रजीय उच्चारण पर अवलम्बित है, वहां अवधी, कन्नौजी बुंदेलखंडी एवं राजस्थानी आदि प्रान्तीय उच्चारणों का भी उस पर पर्याप्त प्रभाव है। अत प्रचलित, प्राचीन, विभिन्न, हस्तलिखित प्रतियों की उपेक्षा कर उसका एक-देशीय रूप निर्धारित कर लेना जहा सहसा दु.साहस है-वहां लक्ष-लक्ष जनों की व्यावहारिक साहित्यिक भाषा के साथ महान् अन्याय भी।

काकरोली, नाथद्वारा, कामवन आदि ब्रज-साहित्य के प्राचीन संग्रहालयो में विद्यमान, विभिन्न, हस्तलिखित पोथियों में-जिन्हें हम लिपि की दृष्टि से शुद्ध और प्रामाणिक स्वीकारते हैं- ब्रजभाषा के शब्द एक समान लिपि में ही लिखित नहीं मिलते।

मित्रवर प श्रीजवाहरलालजी चतुर्वेदी (मथुरा) द्वारा सम्पादित 'सपादित सूरसागर' के 'दो पृष्ठ' नामक पुस्तकिका कुछ दिन पूर्व दृष्टिगोचर हुई थी। सूरकृत जन्म-बधाई का एक पद पढ़कर सहसा ब्रजभाषा के सम्बन्ध में विचार-निमग्न हो जाना पड़ा। 'परामर्श-समिति' में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ प्राय सभी विद्वानों का, और विशेष कर विद्या-विभागीय प्रकाशन के अन्यतम माननीय सम्पादक गो. श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज का नाम देखकर तो महान आश्चर्य हुआ है। अन्य विद्वानो की बात तो मे नहीं कहता, पर उक्त महाराजश्री का परामर्श 'सूरसागर' के विशाल प्रकाशन के सम्बन्ध में है, न कि उसके उदाहृत सम्पादन (शब्दों के रूप निर्धारण सम्बन्ध) में अपनाई गई प्रणाली के लिये। वे वाचनिक एवं व्यावहारिक दोनों में भिन्नता के पक्षपाती नहीं हैं। अष्टछाप-साहित्य के सम्बन्ध में (जो-विद्याविभाग काकरोली से प्रकाशित हुआ है)- उन्होंने भी एक-मत, व्यापक, व्यावहारिक शैली अपनाकर सम्पादन में विशिष्ट सहयोग दिया

है। अत उनका नाम देकर मति-विभ्रम उत्पन्न करना एक विचारणीय विषय है। अस्तु—

श्रीयुत चतुर्वेदीजी द्वारा उदाहरणतया प्रयुक्त जन्म-बधाई के पद का सम्पादित रूप इस प्रकार प्रकाशित किया गया है —

" महाकवि उक्ति . . ..

' व्रज भयौ मैहैर कें पूत, जब यें बात सुनीं।
सुन्हि आँनदे सब लोग, गोकुल गॅनत गुनीं॥ " *

प्रस्तुत तथाकथित सम्पादित पद-खण्ड में शब्दों का जो रूप दिया गया है—वह सर्वांशतया किसी भी प्रामाणिक, प्राचीन प्रति में खोजने पर भी नहीं मिल सकता। उक्त पद में मात्राओं की जटिलता ने जहां मधुर उच्चारण को विकृत कर दिया है, वहां सगीत-लय ताल की कोमलता को भी निवापांजलि प्रदान कर दी है।

इस सब को देखते हुए व्रजभाषा के शब्दों के रूप-सॅवारने में जहॉ महती सावधानता अपेक्षित है, वहॉ प्रान्तीयतापूर्ण दुराग्रह एवं संकुचितता का बहिष्कार भी। काव्य-सरस्वती-प्रवाह के लिये रसान्त प्रवेशी पुलिन की आवश्यकता है, ऊचे २ अवरोधक कगारो की नहीं, जो स्वय ढहते और प्रवाह को अवरुद्ध एव कलुषित करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि— ' अपनी २ ढपली पर अपना २ राग अलापने वाले ' हम व्रज-भाषा-भाषियों में अभी किसी मार्मिक तत्वज्ञ विद्वान् के वर्चस्व को स्वीकार करने की क्षमता का उद्भव नहीं हुआ है। और यही कारण है कि, व्रजभाषा के सम्बन्ध में समीचीन ' सुमधुर ' सरल, सरस पथ के पथिक हम अभी तक नहीं बनपाये हैं।

प्रस्तुत पद-सग्रह में ' परमानन्द-सागर ' की ' ख ' प्रति के आधार पर शब्दों का रूप लिखा गया है, जो एक प्राचीन प्रामाणिक और शुद्ध

---

* देखो '— ' सूरसागर — प्रकाशन ' (प्रकाशक सूरसागर कार्यालय, मथुरा) नामक सूचना-पुस्तकिका का अन्तिम पत्र— " सम्पादित सूरसागर के दो पृष्ठ। "

प्रति है +। इस प्रति को आधारमान कर अष्टछाप-साहित्य के शब्दों की स्वरूपावस्थिति में हम एकमत हैं। और तदनुरूप ही पूर्व की भांति 'छीत-स्वामी' के पदों में भी हमने उसका उपयोग किया है।

यद्यपि पूर्व प्रकाशित कुंभनदास के पद-संग्रह की भांति छीत-स्वामि-कृत पदों का सरल भावार्थ भी प्रस्तुत कर लिया गया था, तथापि प्रकाशन की क्षिप्रता-वश उसे स्थगित कर दिया गया है। अत केवल मूल पदों का संग्रह ही हम इस रूप में हिन्दी जगत् के सम्मुख समुपस्थित कर रहे हैं। साथ में चरित्र तथा भाव-विश्लेषण की एक रूपरेखा भी।

मुद्रण-प्रसंग में पं. मोतीदासजी (चेतनधाम प्रकाशन) दियाबाग बड़ौदा ने जो सुविधा-सौकर्य दिया है, वह भी अविस्मरणीय है। और इसी कारण यह ग्रन्थ आकर्षक ढ ग से आगे आ रहा है।

हिन्दी-साहित्य का अक्षय कुबेर-भंडार 'छीतस्वामी' [पद-संग्रह] की रत्नज्योति से भी भास्वर बनेगा, ऐसी शुभाशा लेकर करुणानिकेतन श्रीद्वारकेश प्रभु से बल-प्रदान की प्रार्थना कर हम अपने वक्तव्य से विराम लेते, और कुछ वाचनिक विषमता के लिये क्षमाकांक्षा करते हैं। शुभम्

विधेय—

प्रो० कण्ठमणि शास्त्री

संचालक,

विद्या विभाग-कांकरोली

[राजस्थान]

स्थान :—
बड़ौदा
रथयात्रोत्सव
स. २०१२

+ परिचयार्थ देखो :— 'सूरसागर के सटिप्त पदों का विश्लेषण' नामक लेखक का लेख (ना. प्र. पत्रिका वर्ष ५९ अङ्क २ सं २०११, पत्र १३२) में परमानंदसागर की प्राचीन प्रति'

दैवी सम्पत्ति के अन्यतम प्रतीक

— श्री छीत-स्वामी —

एक चारित्रिक विश्लेषण] ※ [प्रो० कण्ठमणि शास्त्री

श्री गीता के षोडशाध्याय में दैवी सृष्टि के परिचायक कुछ इत्थंभूत लक्षणों का उल्लेख है, जिनमें कुछ गुण और कुछ दोषाभावरूप हैं। सत्व-सशुद्धि, ज्ञान योग- यवस्थिति, दान, दम यज्ञ, स्वाध्याय तप, आजव आदि अठारह भावरूप गुणों की, अथच अभय, अहिंसा, अक्रोध, अपैशुन, अलोलुप्त्व आदि दोषाभावरूप आठ गुणों की गणना दैवी सम्पत्ति में होती है।

यों तो भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वगुणसम्पन्न तथा सर्वदोषरहित हैं, तथापि उनके कुछ युक्ततम भक्त यदि गुण-स्वरूप लक्षणों से समन्वित होकर जीवन के अनुग्रह पथ को आलोकित करते हैं, तो कुछ दोषाभावरूप व्यावहारिक चरित्र-गठन से उसकी ऊबड़खाबड़ पद्धति को अनुद्घात बनाते हैं। इसी कारण सृष्टि का अनन्त पथ साधकों के लिये सतत सर्व-सुखावह और अभ्युदय नि श्रेयस रूप में सुरक्षित रहता आया है।

भक्तिपथ के पथिक भक्तजन, आध्यात्मिक जीवन की किन किरणों से जनसमाज के व्यवहार-पथ को प्रोद्भासित करते हैं? यह कहना कठिन है। तथापि चरित्र-विश्लेषण द्वारा स्थूलरूप में उसका प्रतिफलन आँका जा सकता है।

प्रस्तुत गुणाकन में हम जैसे कुंभनदास को 'अभय' का× और महानुभाव सूर को 'सत्व-सशुद्धि' का प्रतीक मान सकते हैं, उसी प्रकार छीतस्वामी की जीवनी से उनकी 'अपिशुनता' पर प्रकाश पड़ता है।

साधारणतया मानव-जीवन का प्रवाह कितने अंश में सुचारुता में परिणत होकर लोककल्याण का साधक होता है? कितने अंश में उद्वेजक विनाशक

※ अष्टछाप-छीतस्वामी वार्ता [कांक०-प्रकाशन के आधार पर]

× देखो-कुंभनदास पद-संग्रह चारित्रिक विश्लेषण [कांक. प्रकाशन]

और कितने अंश में वह वृथापगत होकर स्व-रूप का नाशक हो जाता है, इसका परिज्ञान किसे हो सकता है ? पर भगवदिच्छारूप दिष्ट एव शिष्टोपदिष्ट प्रणाली क कारण उस धारा में कभी २ एक घटना-विशेष से मोड़ आ जाता है। परिणामतः वह निर्मलता और स्वच्छता धारणकर जनगण के हृदय सरोरुहों को आप्यायित, विकसित और सुरभित कर जाता है। उसकी अनुपादेयता उपादेयता में परिवर्तित हो जाती है।

इसी मानवीय जीवन-धारा का एक मोड़ 'छीतस्वामी' का जीवन चरित है, जो उद्धतता से सौम्यता में रूपान्तरित हो गया है।

वार्ता के अनुसार इनका नाम 'छीतू चौबे' था। यह पिशुनता (खलता) की मूर्तिमती अभिव्यक्ति थे। मथुरा नगरी के उदण्ड पांच व्यक्तियों में सिरपच, दम्भ, मान, मद से अन्वित, 'ईश्वरोऽहमह' के अप्रतिम उदाहरण 'छीतू-चौबे' को कौन नहीं जानता था ? विप्र-कुल में अभिजात होने पर भी दुःसङ्ग ने उनके उपर जो रग पोता था, लोकोद्वेजक होने से वह शान्त वातावरण के लिये एक चुनौती थी।

इनका जन्म स. १५७२ के लगभग माना जाता है। इनके मातापिता का परिचय नहीं मिलता। जाति से चतुर्वेद ब्राह्मण, मथुरा तीर्थ-क्षेत्र के निवासी और पौरोहित्य वृत्ति से जीवन निर्वाह करनेवाले छीतस्वामी का शिक्षा से कितना सम्पर्क था, कहा नहीं जा सकता ? फिर भी अकबर दरबार के सम्मानित बीरवल जैसे राजपुरुष की यजमान-वृत्ति के परिचालक होने के कारण इन्हें आवश्यक शिक्षा-दीक्षा से शून्य भी नहीं माना जा सकता। प्रारभिक अवस्था में यह लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् न रहे हों, पर पुष्टि-सम्प्रदाय में आने के पूर्व वे काव्य-रचना में अभ्यस्त थे, यह तो स्वीकार करना पड़ता है।

स १५९२ के लगभग छीतस्वामी का पुष्टि-सम्प्रदाय में प्रवेश माना जाता है* वार्ता के लेखनानुसार इनकी शरणागति एक चमत्कार पूर्ण ढग से सम्पन्न हुई थी :—

श्री वल्लभ महाप्रभु के सिद्धान्तों की शीतल छाया में बैठ कर अनेक जीवों ने जिस मधुर रस के आस्वाद द्वारा भव-ताप का उपशम किया था -

---

*सम्प्र कल्पद्रुम पत्र ५५ [लक्ष्मी वे प्रेस, बबई]

वह एक दैवी चमत्कार था । उनके स्वनामधन्य आत्मज श्रीविट्ठलेश प्रभु-चरण भी आधिभौतिकता को समूल सशोधित कर आध्यात्मिकता को व्यावहारिकरूप देने में सलग्न थे । श्रीगोवर्धनोद्धरण की सेवा शृगार-प्रणाली, भगवत्कीर्तन तथा कथा-प्रचार ने भारतीय जीवन को उल्लसित कर ' जीवेम शरद. शत ' की मनोवृत्ति को पनपा दिया था । क्रमश उसमें उदात्त गुणों के स्तवक खिलने लगे थे । अनुद्वेजक पथ के निर्माण, उद्‌बोधक सिद्धान्त के प्रचार एव सशोधक लोक-व्यवहार ने शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के रम्य रूप को जगत् के सामने ला रक्खा था । वैदिक उद्धार-पद्धति में उपेक्षणीय स्त्री, शूद्र और पाप-जीवों के साथ उच्च वर्ग के सहस्रशः जीव उभयविध सुखशान्ति की अभिलाषा से पुष्टि-सम्प्रदाय में धड़ाधड़ दीक्षित हो रहे थे, जो-लौकिक दृष्टि में एक जादू टौना-सा ही था । साधक जीव दैवी कृपा समझकर उससे प्रेम करते थे, तटस्थ व्यक्ति एक चमत्कार समझकर उससे उपेक्षा करते और उत्कर्षासहिष्णु पाखण्ड समझकर उससे द्रोह करते थे ।

' छीतू चौबे ' भी इस वातावरण से क्षुब्ध हो रहे थे । सभवत -तीर्थ-यात्रार्थी यजमानों को इस ओर प्रवृत्त होते देख वे अपने हिलते-डुलते गुरुत्व के आसन को सभालने के लिये साथियों के साथ एक दिन गोकुल जा पहुचे । सहचरों को बाहिर बैठाकर इस चमत्कार की परीक्षार्थ खोखला नारियल और खोटा रुपया ले, वे श्रीगुसांइजी के समक्ष उपस्थित हुए । उनका विचार था कि- इन सारहीन वस्तुओं की भेट धरकर गुसांइजी की मसखरी उड़ाई जाय ? वैष्णवों द्वारा कुछ व्यतिक्रम होने पर अपने मित्रों का सहयोग भी प्राप्त किया जाय । पर बात कुछ अन्य ही हो गई ।

उन्होंने भीतर जाकर श्रीगिरिधरजी के साथ शास्त्र-चर्चा में लीन, शास्त्रों की प्रतिमूर्ति, सौन्दर्य के सागर, प्रभुचरण के भव्य रूप में एक अलौकिक आभा के दर्शन किए । साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम की सन्मनुष्याकृति वांकी-झाकी पाकर 'छीतू चौबे' की कुटिलता कहाँ पलायन कर गई ? इसे वे स्वय भी न समझ सके । 'किंकर्तव्य-विमूढ' होकर वे अपनी दुष्कृति-थोथे नारियल खोटे रुपया-को छिपाने लगे ।

नारियल और रुपया यह दोनों उनके जीवन और व्यवहार के प्रतीक थे। तत्सामयिक भारतीय जीवन भी तो इसी प्रकार था। आपातत. रमणीय वाह्यत· सुन्दर, अन्ततः सारहीन, अनुपादेय और अव्यावहारिक। भले ही नारियल जैसे नागरिक जीवन के भीतर दुमग की राख भरी गई हो, पर था तो वह मांगलिक श्रीफल ही ? उसकी उपादेयता में तो संशय नहीं था ? खोटा रुपया भले ही वाजार में प्रचलित न हो ! पर उसकी मुद्रा तो स्पष्ट थी ? सो सदसद्विवेकी महोदार चरित्रवान् श्रीविट्ठलेश उभय विध इन वस्तुओं का परित्याग कैसे कर सकते थे ? उन्होंने उसे परोक्षत स्वीकार कर लिया।

उपाहृत वस्तुओं को वास्तविक रूप में स्वीकारते हुए प्रभुचरण ने श्रीमुख से कहा : " छीतस्वामी ! तुम नीके हो ! आगे आठ, वहोत दिनन में देखे' अनुग्रह मार्ग की निसर्ग करुणा ने उस दिन से ' छीतू चौबे ' को ' छीत-स्वामी ' के रूप में ढाल दिया। उनकी कुटिलता को ' नीके ' रूप में परिमार्जित कर दिया। ' आगे आठ ' ने उन्हें पीछे न रह जाने के स्थान पर आगे वढ़ चलने को प्रोत्साहित किया। और ' वहोत दिनन में देखे ' ने सहस्र परिवत्सर से वियुक्त जीव को दृष्टि-परिपूत कर संयोग-सुधा से अभिषिक्त कर दिया। देखते ही देखते ' छीतू चौबे ' ' छीतस्वामी ' वन गए। खोखला नारियल सरस श्रीफल एवं खोटा रुपया मुद्रा रूप में प्रचलित हो गया।

इस प्रकार ' छीतू चौबे ' के नाम-रूप, पदार्थ व्यवहार सभी असत् से सत् में, अन्धकार से आलोक में+ पिशुनता से आर्जव में परिणत हो गए। कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुना के तटवासी मथुरिया चौबे को सद्गुरु की शरणागति ने ' तनुनवत्व 'x का प्रतीक वना दिया।

सम्प्रदाय के प्रवेश के वाद छीतस्वामी के भावुक हृदय पर भक्ति-सुधा सिंचन से जो स्निग्धता आई, वह उनके लिये वरदान सिद्ध हो गई। परिणामत. वे ' अष्टछाप ' जैसी महनीय शैली में प्रतिष्ठित किये गये।

+ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय [श्रुति]

x तनुनवत्वमेतावता न दुर्लभतमा रति । [यमुनाष्टक]

यह निश्चित है कि—अनुग्रह सम्प्रदाय की दीक्षा विना इनकी कवित्व शक्ति का बीज सर्वथा झुलस कर ही रह जाता। पर अनुकूल वातावरण पाकर उन्होंने रस-रूप श्री प्रभु के लीला-सकीर्तन द्वारा छीतस्वामी की काव्य-प्रतिभा और जीवन-प्रभा दोनों को भी धन्य बना दिया।

पुष्टिमार्गीय ८४ और २५२ वैष्णवों में अधिकाश ऐसे भक्त थे जो उभयविध सेवा परायण थे। कुछ केवल नामसेवा में कुछ केवल स्वरूप-सेवा में मग्न थे। मार्गीय दीक्षा के अनन्तर प्रायः सभी ने आत्मोद्धार में क्रिया-शीलता व्यक्त की थी। कृपाबल (प्रमेयबल) सभी के लिये अपेक्षित और सभी के ऊपर अयाचित भाव से विद्यमान है, पर कुछ भक्त ऐसे हैं जो साधनानुष्ठान से उसे अनुभवगम्य करते हैं कुछ नि साधनता से।

नि साधनता से तात्पर्य अकर्मण्यता, साधनाभाव अथवा साधन-शून्यता से नहीं है क्योंकि—आचार्यों ने दैन्य को ही* हरितोषण का मुख्य साधन माना है। एतावता निःसाधनता से तात्पर्य उस निष्ठा से है जिसमें साधनो के प्रति बल देने से अहभाव की जागृति नहीं होती। साधन-प्राप्यता के कारण प्रभु में सर्वतन्त्र स्वतन्त्रता का अपहरण-सा भी हो जाता है—और प्रमेयबल की हीनता भी आजाती है। भगवान तो असाधन को भी साधन करनेवाले हैं। अत श्री भगवान् की नि साधन जनोद्धार-परायणता, ईश्वरता (कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थता) करुणावत्सलता एव भक्त-वश्यता आदि विशिष्टताओं में सामञ्जस्य के लिये यह आवश्यक है कि—वेद्‌भागवत शास्त्रादि निर्दिष्ट साधनों को व्यर्थ न मान कर, उन्हें असाधनता की भावना से स्वीकार किया जाय, अथच स्व-आत्मा को नि.साधन माना जाय। करण-साहाय्य से प्राप्त होनेवाली कर्तृत्वाहकृति से रहित होकर 'कर्ता कारयिता हरि' की धारणा से कार्य किया जाय+। शास्त्रोक्त यही निःसाधनता है जो भक्ति-सम्प्रदाय का भूषण है।

हा तो उच्चकोटि के सभी भक्त इसी प्रकार की नि साधन दशा से श्रेय. सिद्धि में प्रवृत्त होते हैं। वे भगवत्कृपा-सौलभ्यार्थ ही यावज्जीवन सेवा

---

* नहि साधन सम्पत्या हरिस्तुष्यति केवलम्
भक्ताना दैन्यमेवैक हरितोषण-साधनम् (सुबोधिनी)

\+ यस्य नाहकृतो भावो० (गीता)

किम्वा कथा का अवलम्ब लेते हैं। यही उनका परम पुरुषार्थ है। 'छीतस्वामी' भी स्वीय शरणागति के अनन्तर सहसा इसी रसानुभूति में रचपच गये। किसी अविज्ञात कारण, किम्वा प्रमेयबल से प्रारभ में ही गुरुचरणों के प्रति उनकी हरिभावना उदित हो गई। वे सहसा बोल उठे .—

" भई अव गिरिधर सों पहिचान (पद सं ३९)

उन्होने कहा :—" अभी तक मैंने केवल ईश्वर का नाम ही सुन रक्खा था। पर आज न जाने किस पूर्व पुण्य के फल–स्वरूप उस ईश्वर से जो साधारण नहीं गिरि–धर है, जिसने विश्व ब्रह्माण्ड के भरण–पोषण का भार उठा रक्खा है–उससे मेरा साक्षात्परिचय बिना किसी प्रयत्न के हो गया है। (कपट रूप धरि छलन गयौ हौं पुरुषोत्तम नहिं जान) ,मैं तो कपटरूप से उन्हें छलने गया था। कापट्य मनोवृत्ति एवं तदनुरूप वेश–धारण में मुझे 'अह' की उद्दाम भावना ने घेर रक्खा था। दृढ़ विश्वास था कि इन्हें (श्री गुसांइजी को) अपनी पाखण्ड वृत्ति से छल लूगा। लोक में हॅसाऊगा। मुझे क्या पता था ? कि–यह पुरुषोत्तम हैं। इन में दिव्य गुणों का ऐसा चमत्कार होगा ? (छोटौ बडौ कछू नहिं जानत छायो तिमिर अग्यान) अविवेक–मोहान्धकार से मुझे छोटे बडे का भान भी नहीं था। आन्तर बाह्य दोनों सवेदनों से सर्वथा शून्य मेरे लिये असुर्यलोक के अतिरिक्त कहा स्थान था ?+ आत्मघात में मैंने क्या बाकी रक्खा था। पर नहीं ? (छीतस्वामी देखत अपनायौ श्री विट्ठल कृपा–निधान) उसी समय निसर्ग करुणा की हद हो गई जब कृपा–निधान श्रीविट्ठलेश प्रभु ने करुणाकातर दृष्टि डालकर मुझे अपना लिया। 'छीतस्वामी' आगे आव' आदि कहकर मुझे स्वरूपावबोध कराया और कृतार्थ कर दिया। 'स्वामी' हो तो ऐसा जो बिछुडे हुए स्वकीय दास को तत्काल अपना ले "।

प्रभुचरण की अहैतुकी दया, अपराध क्षमा करने की उदात्त उदारता से छीतस्वामी की आन्तर दिव्य दृष्टि जागृत हो गई। उन्होंने पुष्टि में दीक्षित हो कर " हौं चरणातपत्र की छैया " (पद सं ४१) गाते

+ असुर्यानाम ते लोकाः अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः॥ ईशा.

हुए अनुभव किया कि–जीवन की विषम परिस्थिति में मुझे तीन ही वस्तुओं की आवश्यकता थी :—

(१) अज्ञान–निवृत्ति (२) उद्धार (३) आश्रय

सो विट्ठलेश प्रभु के मानसिक स्मरण मात्र (सुमिरत मन महिया) से उनके सौम्यदर्शन हुए। इनके ' नवनख चद्र–किरण–मण्डल ' की छबि पडते ही अज्ञानान्ध के मूल कारण पाप–ताप की भी निवृत्त हो गई।* भवमहार्णव की उत्ताल तरगों में मैं न जाने कहां (बह्यौ जात) बहा चला जा रहा था ? सो भवसिन्धु से ' कृपासिन्धु ' ने (गहि बहिया) हाथ पकड कर निकाल लिया। यह एक आश्चर्य था कि दो समुद्रों के सगम में से मेरा उद्धार हो गया ? यह सामर्थ्य लीला क्षीराब्धि–शायी ' श्री–वल्लभ के नन्दन ' के अतिरिक्त अन्यत्र कहा ? एतावता अनुग्रह से ही मेरी उद्धृति हो गई। रही आश्रय की बात–सो आपन्न जनो के परित्राणार्थ सर्वत्र गतिशील गुरु के ' चरणारविन्दों के आतपत्र ' से अधिक शीतल तापहारिणी छाया कहां मिल सकती थी ? गुरु आचार्य–रूप में अवतरित (स्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल) महापुरुष का माहात्म्य ही वाचामगोचर है। इस नि साधन जन के उद्धार और अप्रतिम उद्धारक के सुयश का (सुजस बखान सकति श्रुति नहियां) वर्णन श्रुतियों में भी कहां मिल सकता है।

जीव जब निष्कपट होकर अपनी सदसद् सभी वस्तुओं को अपने इष्ट के चरणों में प्रत्यर्पित कर देता है–प्रपत्ति पथ का वह पथिक बन जाता है–तब उसके उद्धार में काल बाधक नहीं होता। वह शीघ्र ही स्वरूपावास्थित होकर सच्चिदानन्द रसमय प्रभु के दिव्य आनन्द का अहर्निश उपभोग करने का अधिकारी हो जाता है। छीतस्वामी भी पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर भगवत्सख्य रस का आस्वाद लेने लगे। वे अष्टछाप की अन्यतम कक्षा में अधिष्ठित ' सुबल सखा ' के रूप में प्रसिद्ध हुए+।

---

* उत्तुङ्ग रक्त विलसन्नख चक्रवाल ज्योत्स्नाभिराहत महद्हृदयान्धकारम्।
[भाग]

+ हरिरायजी कृत–भावप्रकाश–आधिदैविक मूल स्वरूप [छीत–स्वामी की वार्ता। अष्टछाप। पत्र ५९२ काक. प्रका]

भाव-प्रकाश में अष्टछाप के भक्त ही लीला सम्बन्धी सखा और सखी रूप में निर्देशित हैं। छीतस्वामी-दिवस लीला में भगवान् के 'सुबल' सखा हैं, तो रात्रि लीला में वे श्रीचन्द्रावलीजी की प्रिय सखी 'पद्मा'।

चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों में अष्टछाप का इसीलिये महत्व है कि वे अहर्निश (रात्रि दिवस) दोनों लीलाओं की रसानुभूति करते हैं। शेष भक्त सखी रूप हैं-जो केवल रात्रि लीला की भगवत्संयोगावस्था में स्वरूप सेवा और विप्रयोगावस्था में तदीय कथा। यही दो भक्त-जीवन के पहलू हैं।

क्योंकि भगवत्सखा आठ ही हैं, और सखिया अनन्त। अत भगवल्लीला रसानुभूति की पर्यायवृत्ति के कारण ही इस रूप में उन्हें चित्रित किया गया है। 'भावप्रकाश में आध्यात्मिक रूप की स्फुरणा इसी आन्तर रहस्य को लेकर की गई है।

भगवदीय अन्तरङ्गता के कारण दादु'रिक असती जिह्वा को रसना और वर्हायित नेत्रों को लोचन बनाने में छीतस्वामी को देर नहीं लगी।– अग्नि-सम्पर्क होते ही सुवर्ण अपने शुद्ध हेम-हाटक रूप में प्रोद्भासित होने लगा।

इस प्रकार श्रीगुसांइजी के टौना-टमना की परीक्षा करने 'छीतस्वामी' की प्रारंभिक आन्तर दुष्ट भावना ने जो एक आकर्षण उत्पन्न किया था-उसने वास्तव में सत्य चमत्कार दिखलाया, छीतस्वामी संसार सागर के विषय क्षार अतल स्पर्शी जल से निकल कर भक्ति की शीतल मधुर सुर-प्रस्रविणी में अवगाहन करने लगे। बीजरूप में अन्तर्हित उनकी काव्यधारा भक्ति पुष्टि के उभय कूलों के सहारे बहने और वात्सल्य, सख्य, माधुर्य भावों से तरंगायित होने लगी। महानुभावी सूर की संगीत-साधना ने उसे उद्वेलित किया, तो परमानन्द के भावोद्बोध ने उसे अनुप्राणित और कुमनदास कृष्णदासादि के सहयोग ने उसे धारावाहिकता प्रदान की।

छीतस्वामी ने अपनी संगीतमयी काव्य रचना में 'वर्षोत्सव' एवं 'नित्यलीला' सम्बन्धी सभी प्रकार के पद गाये हैं। संख्या-परिगणना के अनुसार उनके सब से अधिक पद श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण-सम्बन्धी

– जिह्वाऽसतीदार्दुरिकेव सूत! ० [भाग]

समुपलब्ध होते हैं। वे हरि गुरु दोनो में एक अनिर्वचनीय साम्य का परि-दर्शन करते है। × "छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल" की छाप अधिकांशत सभी पदों में सम्प्राप्त है। वार्ता के कथनानुसार श्रीगुसांइजी की कृपा ही उनकी कवित्व शक्ति का प्राण थी +।

उनके पदों में भोग (छाप) रूप से प्रयुक्त 'स्वामी' शब्द 'गिरि-धरन श्रीविट्ठल' के साथ विशेषण रूप में अन्वित होकर एक चमत्कार उत्पन्न करता है। श्रीविट्ठलेश्वर द्वारा शिष्टता किम्वा नीतिमत्ता से प्रयुक्त 'छीतू चौबे' के स्थान पर अपना नाम 'छीतस्वामी' सुनकर वे पानी-पानी हो गए थे। फलत अपने लिये विशेष्यतया प्रयुक्त 'स्वामी' शब्द को उन्होंने शरणागति बोधक विशेषण रूप में परिवर्तित कर दिया। उनकी स्वामित्व की 'अह' वृत्ति नष्ट हो कर 'दासोऽह' के रूप में पनप उठी। गुण्डों के स्वामी होकर भी वे हरिदासों के दास बन गये। उन्होंने 'छीत' अपने लिये सुरक्षित रखते हुए 'स्वामित्व' को "त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' के अन्तर्हित कर दिया। स्वामित्व की समस्त झझटों से छुट्टी पाकर वे नि साधन बन गये।

शरणागति की दृढभावना से प्रपन्न जीव में जब विवेक धैर्य, आश्रय और विश्वास आदि जड पकड लेते हैं तब वह मानस की चचलता से रहित होकर मानसी सेवा में सलग्न हो जाता है। विवेक धैर्य के समाव-लम्बन से आराधक जहा स्वकीय आत्माको सतत उन्मुख रखता है, वहा आश्रय और दृढ विश्वास की अनुभूति से अपने जीवन-व्यवहार को भी अधोमुख होने से बचाता रहता है। जीवन का व्यवहार, जहा तक आन्तर कोमल भावनाओं को ठेस पहुंचाये बिना चलता रहता है, भक्त ससार में पुष्कर-पलाशवन्निर्लेप रहता है। भोजन-आच्छादन की क्या? जीवन-मरण की समस्या से भी वह अकपित रहता है।

विश्व परिपालक की साहजिक करुणा पर उसे भरोसा रहता है, वह स्वजन सम्बन्धियों की अनुकूलता देखकर उन्हें स्वय श्रद्धापूत पथ पर ले चलता है तो उनकी उदासीनता पहिचान कर स्वय अकेला ही अग्रेसर होता

× यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ [ ]

+ देखो-अष्टछाप वार्ता पत्र ६०९ [काक. प्रका]

है, और प्रतिकूलता का मानकर उनके त्याग में भी हिचकिचाता नहीं है। +
वह भूतकाल के प्रति विरक्त, वर्तमान के प्रति असक्त अथच भविष्य की चिन्ता से वह उन्मुक्त रहता है। –

प्रपत्ति की प्रारम्भिक अवस्था में हो चाहे परिपक्वावस्था में छीतस्वामी भी स्वकीय जीविका-निर्वाह से जहां निश्चिन्त थे, वहां विप्रतिकूल परिस्थिति में त्याग के लिये भी कटिबद्ध थे। बहुत वर्षों तक राजा बीरबल की पौरोहित्य वृत्ति से उनका चरितार्थ चलते रहने पर एक दिन ऐसा भी आया जब उन्होंने स्वल्प प्रसग पर ही सदासर्वदा के लिये उससे नाता तोड लिया।

भारत के महान् सम्राट् अकबर का सुख समृद्धि वैभवशाली साम्राज्य, राजकीय सहयोग द्वारा भौतिक उन्नति के साधनों की सुलभता, राज्य के स्तभ रूप, बादशाह के अत्यन्त निकटतम मित्र महाराजा बीरबल से परिचय, उनकी गुरुवृत्ति, श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण की कृपा-पात्रता, तीर्थक्षेत्र की प्रतिष्ठा आदि उनके जीवन में अनुकूल उपकरण थे, जिनके सहारे छीतस्वामी भौतिक उच्चातिउच्च स्थान पर आसीन हो सकते थे, पर नहीं, उन्हें तो किसी परम पद का पथिक बनना था। और एतदर्थ वे बडे से बडे त्याग के लिये सन्नद्ध थे। वार्ता में कुछ प्रसग ऐसे हैं-जो छीतस्वामी की त्याग वृत्ति के पूर्ण परिचायक हैं।

× एक बार छीतस्वामी प्रतिवर्ष की भांति वर्षाशनवृत्ति लेने बीरबल के पास आगरा जा पहुचे। बीरबल ने अपने पुरोहित का स्वागत कर अपने ही प्रासाद में उन्हें निवास-स्थान दिया। रात्रि विश्राम के अनन्तर प्रातःकाल उन्होंने श्रीमहाप्रभु के विनति-आश्रय के पद गाये। इस प्रसग में—

"जै श्रीवल्लभराज-कुमार। परपाखड कपट खडन-कर, सकल वेद धुर-धार। 'छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रगट कृष्ण अवतार" (पद सं ८) कीर्तन में 'प्रगट कृष्ण अवतार' शब्दों को सुनकर बीरबल को बडा आश्चर्य हुआ।

+ भार्यादिरनुकूलश्चेत्कारयेद् भगवत्क्रियाम्०, (श्रीवल्लभाचार्य)

– चिन्ता कापि न कार्या० (नवरत्न)

× छीतस्वामी वार्ता द्वि [अष्टछाप, काक प्रकाशन पत्र ६१०]

यद्यपि बीरबल इसके पूर्व ही पुष्टि सम्प्रदाय से प्रभावित होकर उसकी कई उलझी हुई राजनैतिक गुत्थियाँ सुलझा चुके थे, उनकी पुत्री श्रीगुसाइजी की शिष्या और सम्प्रदाय में दीक्षित थी *। वे श्रीगुसाइजी को पूज्य आदरभाव से देखते और उन्हें एक महापुरुष समझते थे। पर छीतस्वामी को 'प्रगट कृष्ण अवतार' वाली भावना उन्हें कुछ उचित नहीं जँची। पद सुनकर भी शिष्टाचार से वे छीतस्वामी से कुछ भी न कह सके, चुप हो कर रह गये।

इसके अनन्तर कुछ समय बाद स्नानादि से निवृत्त होकर छीतस्वामी ने प्रभु-सेवावसर में एक पद और गाया :—

"जे वसुदेव किए पूरन तप, तेइ फल फलित श्रीवल्लभ-देह।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल तेइ एइ एइ तेइ कछु न सदेह"

[पद स १५]+

प्रस्तुत पद में वर्णित छीतस्वामी की दृढ निश्चयात्मक भावना ने जब प्रभु और गुरु में एकरूपता व्यक्त कर दी तो बीरबल उसे पचा न सके।

वे बोले -स्वामीजी! गुरु के प्रति आपकी चाहे जो भावना हो, पर कदाचित् म्लेच्छ बादशाह अकबर इसे सुनकर आपसे ईश्वर विषयक प्रश्न पूछ बैठेगा तो प्रत्यक्षतया आप इसे कैसे सिद्ध करेंगे ?×

---

* देखो-बीरबल की बेटी की वार्ता (दोसौ बावन वै वार्ता। काक प्रका)

+ छीतस्वामी ने इस पद की रचना तब की थी जब उन्होंने श्रीगुसाइजी को गोकुल और श्रीनाथजीद्वार तथा बैठक और मदिर में समकाल में ही देखा था। उनकी व्यापकता से वे प्रभावित होकर उन्होंने यह पद गाकर सुनाया था। (अष्टछाप-वार्ता पत्र ६०६। काक. प्रकाशन)

× ऐसा अनुमान है कि-बीरबल ने श्रीगुसाइजी के प्रति अनुदार भावना से नहीं प्रत्युत शाही महलों के सन्निकट प्रात काल ही सगीत द्वारा शान्तिभग के भय से रूपान्तर में छीतस्वामी को रोका होगा। उसे आशका होगी कि-कीर्तन सुन कर कदाचित् बादशाह छीतस्वामी को दरबार में बुला कर इस प्रकार का प्रश्न पूछ बैठा तो विषम समस्या उठ खडी होगी। सूर और कुभनदास के समान भक्तों की स्वाभाविक वृत्ति से छीतस्वामी भी यदि राजमर्यादा के

बीरबल की उक्ति से छीतस्वामी को हार्दिक ठेस लगी, और वे झल्ला उठे। थोड़ी सी आर्थिक वृत्ति पर पारमार्थिक अनुभूति को निछावर कर देना उन्हे अभीष्ट नहीं था।

प्रत्युत्तर में छीतस्वामी ने कहा–कि–म्लेच्छ देशाधिपति के पूछने पर मैं उसका समुचित प्रत्युत्तर दूंगा पर इस प्रकार की कुबुद्धि के कारण मेरे समुख तो तुम्हीं म्लेच्छ हो, आज से हमारा–तुम्हारा सम्बन्ध टूटता है"

इस प्रकार बीरबल का तिरस्कार कर छीतस्वामी गोकुल चले आए। आगे से उन्होंने सदा के लिये बीरबल का वार्षिक वृत्ति का परित्याग कर साधारणतया जीवन–निर्वाह करने लगे।

छीतस्वामी की वार्ता में लिखा है कि —

अकबरने जब हलकारा द्वारा इस मनमुटाव की बात सुनी तो, उसने बीरबल से सारा वृत्त पूछ कर कहा कि, गुसांइजी के प्रति तुम्हे ऐसी शङ्का क्यों हुई ? वे वास्तव में महापुरुष ईश्वरावतार हैं।

इस समर्थन में बादशाह ने अपने साथ घटी उस घटना का स्मरण भी बीरबल को दिलाया, जिसमें यमुनाजी में से फेंकी हुई सुवर्णमणि के समान अनेकों मणियों के आदान–प्रदान का प्रसग था। यद्यपि बीरबल को बादशाह की इस भावना से सन्तोष तो हुआ तथापि फिर वह श्रीगुसांइजी के प्रति किसी प्रकार के विचार व्यक्त न कर सका। *

प्रतिकूल कुछ कह बैठेंगें तो शाही दरबार में वैष्णव धर्म के प्रति कुछ विषम विचार हो सकते हैं।"

ऐसा सोचकर बीरबल ने रूपान्तर में छीतस्वामी से इस प्रकार का प्रश्न किया होगा–जिस पर वे चिढ गये।

* अष्टछाप–छीतस्वामी वार्ता (कांक. प्रका. पत्र ६१२)

इस प्रसग पर वार्ता में एक स्थान पर लिखा है कि .—

तातें श्रीगुसांइजी कौ एसौ प्रताप है, जो देसाधिपति मलेच्छ (सोऊ) जानत है। तातें श्रीगुसांइजी साक्षात् ईश्वर हैं। और बीरबल बहिर्मुख है। तातें श्रीगुसांइजी के स्वरूप कौ ज्ञान नाहीं। श्रीगुसांइजी आप श्रीमुखतें

बीरबल की वृत्ति के परित्याग का समाचार जब श्रीगुसाइंजी ने सुना तो वे छीतस्वामी की वैष्णवत्व की भावना से प्रसन्न तो हुए, पर उनकी निर्वाह की चिन्ता प्रभुचरण को लग गई। सच तो है-' नित्याभियुक्त भगवद् भक्तों के योगक्षेम को चिन्ता उन्हें नहीं होती। इस भार को कोई दूसरा ही उठा लेता है §

सो प्रभुचरण विट्ठलेश्वर ने लाहौर के वैष्णवों को यह सेवा सौंप कर कहा कि-हमारा पत्र लेकर छीतस्वामी के लाहौर आने पर उनका ध्यान रखना और उनकी यथायोग्य सभावना करते रहना।

छीतस्वामी ने जब अर्थोपार्जन के लिये लाहौर जाने की बात सुनी तो वे श्रीगुसाईजी की सहज करुणावत्सलता से गद्‌गद् हो गये। भिक्षा और वैष्णवता इन दो विकल्पों में उन्हें अन्तिम हो ठीक जँची। द्वितीय वृत्ति को अद्वितीय समझकर उन्होंने विनीत शब्दों में यह कह कर कि-' प्रभो ! मै भिक्षा के लिये वैष्णव नहीं हुआ हू ' एक पद गाया जो इस प्रकार था-

---

कबहू कबहू कहते जो बीरबल बहिर्मुख है।" [अष्टछाप वार्ता (कांक प्रका पत्र ६१५)]

यों तो बीरबल पुष्टिसम्प्रदाय का दीक्षित हो चाहे न हो-पर उसकी प्रतिष्ठा-स्थापन में अपने प्रभाव से काम लेता था। वह कई बार सम्पर्क में आकर श्रीगुसाइजी से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर चुका था। एसी स्थिति में उसके लिये ' बहिर्मुख ' विशेषण विचारणीय है।

' अकबर बादशाह ने सवत् १६३९ (सन् १५८२) में अपने नवीन सम्प्रदाय ' दीने इलाही ' की स्थापना की थी। प्रायः यह प्रसिद्ध है कि—बीरबल ही ऐसे हिन्दू थे जिन्होंने सर्व प्रथम इस सम्प्रदाय की सदस्यता ग्रहण की थी। [अकबरी दरबार और हिन्दी कवि (विश्व ,लखनऊ प्रका. पत्र)]

ऐसा अनुमान होता है कि-इसी मुस्लिम धारणा से प्रभावित बीरबल को ' बहिर्मुख ' समझ कर छीतस्वामी ने छोड दिया हो और इसी कारण श्रीगुसाइजी भी उसे ' बहिर्मुख ' कहने लगे हों, यह घटना सवत् १६३९ के बाद, स १६४२ के पूर्व घटी होगी। स. १६४२ में श्रीगुसाइजी के पश्चात् ही छीतस्वामी ने इहलोक का त्याग कर दिया था।

§ तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम् [गीता]

१ "हम तो श्रीविट्ठलनाथ उपासी।
सदा सेवों श्रीवल्लभनंदन, कहा करौं जाई कासी
[पद सं ४३]

तात्पर्य –' काश्या मरणान्मुक्ति ' के सिद्धान्तानुसार जब मोक्ष के लिये भी मुक्तिक्षेत्र काशी की भी मुझे अपेक्षा नहीं है, यहीं इन चरणों से निःसृत भक्ति–सुरसरी से मेरा उद्धार होना है – श्रीविट्ठलनाथ के द्वारा प्रदत्त मन्त्र–' उपासना ' और ' श्रीवल्लभनन्दन ' रूप विश्वेश्वर की सतत सेवना ही मेरी अभ्युदय साधिका है तो अन्यत्र भटकने से क्या प्रयोजन ? भाग्योदय से लब्ध अनाथों के नाथ को छोडकर अन्यत्र आश्रय ढूंढना दुरन्त आसुरी आशा है। वेद शास्त्रों के सारभूत ' स्वामी ' गिरिधरन श्रीविट्ठल ही समग्र पुरुषार्थ है । '

छीतस्वामी की अयाचित, सन्तुष्ट वृत्ति से श्रीप्रभुचरण अत्यधिक प्रभावित हुए, उन्होंने स्वतः ही प्रतिवर्ष ' छीत-स्वामी ' के नाम १००) रुपया की हुन्डी आते रहने की व्यवस्था कर दी। लाहौर के वैष्णवों ने ' छीतस्वामी ' के निर्वाह का भार अपने ऊपर ले लिया।

इस प्रकार छीतस्वामी ने अपरिग्रह वृत्ति और याचना-परित्याग के द्वारा अपने जीवन को और भी अधिक साधनामय बना लिया।

मानव–जीवन, भवबन्धनात्मक एक आदि अान्त-रज्जु है, जो त्रिगुणमय सूत्रो से गुथी और इन्द्रियों की विविध वृत्तियों से रंजित है। यावदायुष्य लम्बायमान इस रज्जु में स्वकीय विषमाचरण से जटिलताएँ उत्पन्न करनेवाले जन भी हैं, जीवन की समस्याओं में स्वयमेव उलझ कर दूसरो को उलझा लेनेवाले भी हैं, और आत्मीय सौम्य–जीवन के द्वारा विकट परिस्थितियो से स्वय मुक्त हो कर दयनीय जीवों के मोह–पाश के उच्छेदक सुकृती–जन भी हैं।

मरमज्ञी पुरुष सत्व परिशुद्ध होकर विवेक हेति से हृत्स्थ काम–जटाओं का उन्मूलन करते हैं, सशयों का विनाश करते, और आत्मा में परमात्म-दर्शन कर कर्मपाशों से उन्मुक्त हो जाते हैं।– भगवच्चरणनलिनानुध्यान से उन्हे आत्म–दर्शन एव भगवच्चरण–सरोजपरिचर्या से उन्हें ब्रह्म–परिदर्शन

---

१ छीतस्वामी–वार्ता [अष्टछाप, काक. प्रका. पत्र ६१९]
– भिद्यते हृदयग्रन्थि० [उपनिषद्]

में सफलता मिलती है ।+ तदनु भगवन्मुखारविन्द-नि सृत वेणुनादामृत से आप्यायित हो रसस्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम के सम्यग्दर्शनों के बड़भागी बनते है । निज जीवन की कृतार्थता के साथ परकीय कृतार्थता उनके विचार-चीर में ओतप्रोत रहती है । आत्मिक शान्ति के साथ भवताप तप्त जीवों को भी सरस जीवन देनेवाली अखिल कल्मषापह, श्रवणमगल भगवत्कथा-सुधा का उन्मुक्त वितरण करनेवाले वास्तव में ऐसे जन ही ' दानशौण्ड ' हैं भागवतीय परिभाषा में इन्हें ' भूरिदा. जना. ' कहा गया है ।

इस प्रकार स्वकीय उदाहरण तथा व्यवहार से लोकजीवन को पर्याप्त प्रकाशित करनेवाले विरले होते हैं । और ऐसे ही महापुरुषों में हम ' छीतस्वामी ' की गणना कर सकते हैं ।

निज जीवनोद्देश्य की परिसमाप्ति का प्रभुनिर्दिष्ट सकेत पाकर स १६४२ में छीतस्वामी ने इह लौकिक जीवन को सवृत कर लिया । ' गिरिधरन श्रीविट्ठलस्वरूप ' स्वकीय गुरुचरणों के भूतल-परित्याग का समाचार सुनकर वे व्यथित हो गए । अन्तिम अवसर पर प्रभु श्रीगोवर्धनोद्धरण ने उन्हें साक्षाद्दर्शन दिया । आध्यात्मिक दिव्य दृष्टि प्राप्त होते ही, छीतस्वामी ने श्री प्रभुचरण के अलौकिक तेज'पुञ्ज को तदीय सप्त आत्मजो के रूप में विकसित देखा, जो षट्धर्म विशिष्ट, समष्टि धर्मी स्वरूप में अद्यावधि भूतल को उद्धार के प्रति उन्मुख करता आ रहा था ।

पुष्टिमार्ग के विशेष प्रचारार्थ उसे व्यापक-विभक्त-रूप में प्रत्यक्ष कर छीतस्वामी के अन्तर में त्रिकालाबाधित लीलानुभूति जागृति हो गई । उन्होंने प्रभुचरण की सतत भूतल-अवस्थिति की अनुभूति में एक पद गाया-' विहरत सातौं रूप धरें० ' (पद सं. २९) पद की अन्तिम तुक ' छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल जिहिं भजि अखिल तरें ' की सम्पूर्ती-समकाल ही वे भजननौका का सहारा ले भवसागर से पार हो गए । भगवल्लीला सकीर्तन के फल-स्वरूप उन्होंने साक्षाद्दिव्य रस की अनुभूति प्राप्त कर ली । धन्य ' छीतस्वामी ' और धन्य उनका दैवी सम्पत्ति में समावेश ।

+ यदङ्घ्र्यनुध्यान समाधिधौतया०

विचक्षणायच्चरणोपसादनात्० (भाग. द्वि.)

" छीतस्वामी "

[एक भाव-विश्लेपण]

— कु० श्रीगोकुलानन्द तैलङ्ग ' साहित्यरत्न ' —

काव्य की प्राण-शक्ति उसमें अन्तर्निहित वे भावानुभूतिया हैं, जो कवि के अन्तश्चेतन से निकल कर, उसकी वाणी-वीणा के गुञ्जन रूप में उसे एक सञ्जीविनी प्रदान करती हैं। कवि-वाणी की सजीवता, मर्मस्पर्शिता और शालीनता इन्हीं अनुभूतियों पर निर्भर है। अनुभूतियां ही तो जीवन है, काव्य है और प्रेम अथवा रागात्मिका वृत्ति की प्राण-प्रतिष्ठा। सरस अनुभूतियों की आधार-शिला पर ही भाव-साम्राज्य का अस्तित्व टिका हुआ है।

भाव और भक्ति परस्पर पूरक हैं, एक-दूसरे की क्रम-कोटिया हैं। भाव आत्माभिव्यक्ति है तो भक्ति एक आत्मनिष्ठा। जहां दोनों का समन्वय वा सन्तुलन है, वहीं उत्कृष्ट काव्य की ससृष्टि होती है। महाकवियो के काव्य के ये ही दो पार्श्व हैं-भाव और भक्ति। भाव-सिन्धु की उत्ताल तरलित ऊर्मियों के अवगाहन से ही, कवि वा भक्त के हृदय में एक स्पन्दन होता है। और तब अन्तरतम के किसी निभृत अञ्चल से निस्सृत नि स्वन गान-लहरी, उसे, उसके प्राण और रग-रग को सम्मोहित कर, अपने किसी ' प्रियतम ' के प्रेम-पाश में अनुबन्धित होने को विवश कर देती है।

यह है, भाव और भक्ति की एक रूपता-काव्य और जीवन का सामञ्जस्य। अष्टछाप की वाणी इन्हीं मूल तत्वों के ओत-प्रोत सम्बन्ध से अनुप्राणित है छीतस्वामी भी अपने श्याममनोहर के प्रेम-पाश में बँधे हुए हैं। स्वयं बंधे हुए ही नहीं, अपने भाव-बन्धन में उन्होंने उन्हें भी रोक रखा है। अन्तरतम में एक बार प्रेम-रज्जु से खिचे चले आने पर फिर वहा से सहज मुक्त कैसे हुआ जा सकता है ? प्रभु तो भक्त-परवश ठहरे ! भक्त का अनुराग-राग में भींगना और प्रभु का उसके भाव-मिञ्चित अन्तर्देश में विलस जाना उनके परम अनुग्रह-भक्ति-कृपा के दान का ही द्योतन है। कवि की ही वाणी में सुनिये--

प्रीतम प्रीति तें बस कीनों।
उर अंतर तें स्याममनोहर नेंकहु जान न दीनों॥
सहि नहिं सकत बिछुरनों पल भरि भलौ नेमु यह लीनों।
' छीतस्वामी ' गिरिधरन श्रीविठ्ठल भक्ति कृपा रस भीनों॥

(पद स. ११२)

प्रभु पर भक्त का कितना बड़ा पहरा है–'नैंकहु जान न दीनों'। एक पल का भी वियोग असह्य जो ठहरा। निरवधि प्रियतम के सान्निध्य में रहना–कितना सत्य सङ्कल्प है, कितना कठोर व्रत! फिर भला प्रभु इस स्नेहानुबन्ध में क्यों न बद्ध होंगे?

ऐसे भाव-भरित, प्रेम-पगे, नेह-भींगे भावुक हृदय की कल्पना कीजिये, जिसके अन्त प्रदेश में अहर्निश श्यामल प्रीति घटाएँ झुक-झूम कर रस-वर्षा कर रही हैं और रूप-सौन्दर्य-माधुरी के पान के लिये जो एक-दृष्टि से अपने प्रियतम को निरख रहा है। यह कौन है? कोई रूप-ठगी, रगमगी रस-पगी गोपाङ्गना है अथवा गोपीभाव-विभावित स्वय कवि का भक्त-हृदय ही! हम तो दोनों में ही एकरसता, एकरूपता और एकतानता पाते हैं। भक्त कवि अपने बाह्य स्वतन्त्र अस्तित्व को भूल जाता है, अपने आपको खो बैठता है और तद्रूप, तदासक्त होकर उसके अन्त चक्षुओं के समक्ष ब्रज की किसी सघन बेलि-वल्लरी-विलसित निभृत निकुञ्ज का दृश्य नाच उठता है—

> बादर झूमि झूमि बरसन लागे।
> दामिनी दमकत चौंकि स्याम घन गरजन सुनि सुनि जागे॥
> गोपी द्वारें ठाढी भींजति मुख देखन कारन अनुरागे।
> 'छीतस्वामी' गिरिधन श्रीविठ्ठल ओत-प्रोत रस पागे॥
> (पद स ७०)

'गोपी द्वारे ठाढी भींजति'–कितनी तल्लीनता है–रसमयता है। भीतर और बाहर, सर्वत्र अनुराग-रस से अभिषेक हो रहा है। प्राण और शरीर–हृदय और नेत्र, दोनों ही प्रेम-रस में डूबते-उतराते, तरलित-विगलित हो रहे हैं। चिन्तन कीजिये-श्यामसुन्दर शस्य श्यामला वसुन्धरा की हरित-भरित गोद में, किसी मेघ-श्याम निकुञ्ज की हरीतिमा के बीच शयन कर रहे हैं। सजल नील नीरद झूम झूम कर बरसने लगे, सरसने लगे। मेघों के सघोष तर्जन-गर्जन के साथ दामिनी की चमक-दमक ने उन्हें जगा दिया, वे चौंक उठे। घनश्याम नन्दनन्दन की इस उद्विग्नता का एक मनोवैज्ञानिक आधार है। भक्त के हृदय में विप्लव हो घुटती-सिमटती वियोग-व्यथाओं की धूम-धूसर घन-घटाओं से उसका हृदय आक्रान्त हो, तीखी वेदनाओं से अन्तर विनाश के वज्रपाती

चीत्कार के साज सजा रहा हो और रूप के प्यासे अश्रुविगलित नेत्र जब नेह-मेह-मुक्ता के स्वागत-हार पिरोते हुए, अनुपल हृदय की सर्वस्व सञ्चित निधि को लुटा रहे हों-निकुञ्ज द्वार पर खड़ी 'गोपी' माँग रही हो, तब भला प्रभु सुख-चैन की नींद कैसे सो सकते हैं? भगवान् और भक्त दोनों ही तो एक ही रस से ओत-प्रोत हैं। एक ओर बेचैनी, तड़प और सिसक है तो क्या दूसरी ओर टीस और दर्द नहीं होगा?

इस प्रकार की लगन वाला भक्त या कवि एक ही रग में रग जाता है। छीतस्वामी किसी गोपी की ही प्रीति-भावना को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं-गोपी नहीं, कवि का अनुराग रंगा हृदय ही बोल रहा है-

गिरिधरलाल के रंग राँची।
तन सुधि भूलि गई मोकों अब कहति हों तो सों सांची॥
मारग जात मिले मोहिं सजनी मोतन मुरि मुसिकाने।
मन हरि लियो नंद के नंदन चितवनि मांझि विकाने॥
जा दिन तें मेरी दृष्टि परे सखि तब तें रह्यो न जावै।
ऐसो है कोऊ हितू हमारो 'छीत' स्वामी सों मिलावै॥
(पद स १००)

कितनी गहरी आसक्ति-आत्मविस्मृति की दशा है! 'तन सुधि भूल गई'-मन ही खो दिया तो तन की कौन कहे? श्यामसुन्दर की रूप मोहिनी-उनका 'मुरि मुसिकाना'-कितना जादू भरा प्रभाव डालता है? एक ही चितवन में, मदभरी दृष्टि के निक्षेप मे बिक गये लुट गये, मिट गये। 'स्व' पर अधिकार जाता रहा-दूसरे के सदा-सर्वदा के लिये हो गये। दृष्टि-मिलन के क्षण मे ही, अधीरता ने हृदय में घर कर लिया। अब उनका मधुर मिलन ही एक मात्र जीवन के सुख का साधन है। जिस रग में एक बार हृदय सराबोर हो गया, अब दूसरा रग उस पर नहीं चढ सकता। गिरिधरलाल का रग है, श्याम रग-सब को अपने में समानेवाला, आत्मसात् कर जानेवाला।

अतएव कवि अब किसी 'हितू' की खोज में है, जो उसके 'स्वामी' से उसे मिला सके। प्रत्येक वस्तु-प्रियतम वस्तु को पाने के लिये कोई माध्यम चाहिये, कोई साधन! उसके बिना साध्य दुर्लभ है। उस 'हितू'

माध्यम के रूप में अपने गुरु-चरणों मे कवि की निष्ठा आश्रय पाती है। वह कहता है—

हौं चरणातपत्र की छहियां।
कृपासिंधु श्रीवल्लभनंदन वह्यौ जात राख्यौ गहि बहियां॥
नव नख चंद किरन मंडल छबि हरत ताप सुमिरत मन महियां।
'छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल सुजस बखान सकति स्रुति नहियां।
(पद स ४१)

अतल भव-जलधि की तरल तरङ्गों में यह जीव वहा रहा है। दुख दारिद्रय की अनुपल प्रवर्द्धमान् पीडाओं के थपेड़ों से त्रस्त हो, अभाव और विवशताओं के भॅवर-जाल में फॅस कर, कूल-किनारों से बहुत दूर भटकता-बहकता किसी सुखद आश्रय के लिये वह प्रतिक्षण इच्छुक है। बाह पकड़ कर उसे कोई गन्तव्य स्थल को पहुँचा दे, इसके लिये वह सतृष्ण नेत्रों से चारों दिशाओं में देख रहा है। सौभाग्यवश इस भवसिन्धु के बीच सम्बल रूप श्रीवल्लभनन्दन दिखाई पड़ते हैं और वह अपने उन्हीं कमल-कोमल, सकल ताप-दाप-निवारक गुरु-चरणों की शीतल छाया में गहरी निष्ठा और आत्म-विश्वास के साथ आश्रय ग्रहण करता है। एक ओर अगम भवसिन्धु है तो दूसरी ओर सुगम कृपा-सिन्धु गुरुचरण। आपके नित-नूतन-विकासमान्, कृपाज्योति-पुञ्ज चरण-नखों में कोटि-कोटि चन्द्र-किरणों की आभा-सतत सुधा-सिञ्चन-समर्थ सुधाशु की अमर शीतल छाया सन्निहित है। स्मरण मात्र से ही ससार-तापों का निवारण होता है, ऐसे हैं श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण-श्रुतियों से भी सुयश-गान जिनका अशक्य है।

प्रभु से मिलने में साधक गुरुचरणों-उस एक मात्र 'हितू' में कवि की कितनी दृढ निष्ठा है। हरि और हरिभक्तों के बल पर ही तो-उनके अनुग्रह की आशा ही पर तो वह अवलम्बित है। मन, कर्म और वाणी से उनकी कृपा-प्राप्ति ही उसका व्रत है-भरोसा है—

मोकों बल है दोऊ ठौर कौ।
इक बल मोकों हरिभक्तनि कौ दूजें नंदकिसोर कौ॥
मन क्रम बचन इहै व्रत लीनौ नाहिं भरोसौ और कौ।
'छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल श्रीवल्लभ सिरमौर कौ॥
(पद स १८०)

इस प्रकार कवि को अपना वाञ्छित 'हितू' मिल गया और उसने अपने प्रियतम से मिलन करा दिया। अब तो वे लावण्य-निधि प्रभु के निर्निमेष दर्शन में निरत हैं। उस विलक्षण, नित नवीन-वर्द्धमान् रूप के भँवर-जाल में जब एक बार फँस गये, फिर उससे मुक्ति कैसे सम्भव है? उस सौभाग्य-श्री से आपूरित नख-सिख-सौन्दर्य के दर्शन बिना उन्हें एक पल भी चैन नहीं। सुनिये—

नैननि निरखे हरि कौ रूप।
निकसि सकत नहीं लावनि निधि तें मानों परयो कोऊ कूप॥
'छीतस्वामी' गिरिधरन विराजित नख-सिख रूप अनूप।
बिनु देखे मोहि कल न परत छिनु सुभग वदन छवि जूप॥
(पद स १०४)

समग्र अन्तः और वाह्य वृत्तियां उस सौन्दर्य-पुञ्ज में जाकर अधिनिष्ठित हो जाती हैं। मन की गतियों का सिमिट कर पुञ्जीभूत हो जाना और एक केन्द्र में उनका समाहित होना ही तो साधना की चरम कोटि है—चिन्तन और समाधिस्थता का उत्कृष्ट रूप है। अपनी इसी स्थिति को कवि किसी रूप-सुधा-छकी एवं गीति-माधुरी से आकृष्ट गोप-बाला की वाणी मे चित्रित करता है—

मुरली सुनत गई सुधि मेरी।
गृह कारज सब भूलि गई मोहिं सपत करति हौं तेरी॥
इकटक लागि सुनति स्रवननि पुट जैसें चित्र चितेरी।
'छीतस्वामी' गिरिधर मन करष्यौ इत इत उत चलै न फेरी॥
(पद स १०८)

रागात्मिका वृत्ति ही रस है, सौन्दर्य है, सङ्गीत है। तात्विक दृष्टि से, तीनों का मौलिक स्वरूप एक ही है-सत्यं-शिवं-सुन्दरम्। जहा रस है, वहा सौन्दर्य है और जहा सौन्दर्य है वहा सङ्गीत स्वतएव आपूरित है। नन्दनन्दन के प्रेम-रस और सौन्दर्य-केन्द्र से ही उनका वेणुनाद निस्सृत है। इसीलिये व्रज-ललनाओं का हृदय उनके प्रियतम के अनुराग-राग एव माधुर्य की भांति ही, उनके वेणु-सगीत की

मधुरिमा से भी आकृष्ट होता है। वे श्रवण पुटों से अनुक्षण उस गीति-माधुरी को पी-पी कर भी नहीं अघाती। जहा से बशी की मादक ध्वनि आ रही है, उसी ओर किसी चितेरे के रेखा-चित्र की भाति अडिग, मूक और जड़वत् कर्णपुटों को लगाये बैठी हैं। मानों सौन्दर्य-पान की कान और नेत्रों की क्षमता एकीभूत हो गयी है-शब्द और रूप-ग्रहण की शक्ति श्रवणों में ही समायी हुई है। रूप-माधुरी और वेणु-ध्वनि में कितना एकात्मभाव है।

इस द्विविध माधुर्य के निरन्तर आस्वाद के लिये ही, कवि इस वातावरण से एक क्षण भी विलग होना नहीं चाहता। उसकी आन्तर अभिलाषा है—

अहो विधना तोपें अचरा पसारि मांगों
जनमु जनमु दीजै याही व्रज बसिवौ।
अहीर की जाति समीप नंद घरु
घरी घरी घनस्याम हेरि हेरि हँसिवौ॥
दधि के दान मिस व्रज की बीथिनि में
झकझोरनि अग अग कौ परसिवौ॥
'छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
सरद रैनि रस रास कौ बिलसिवौ॥ (पद स ११७)

किसी व्रज-सुन्दरी की यह कामना कवि के जीवन में फलित हो सकेगी? क्यों नहीं? अनन्य भक्त हरि से कब विलग हो सकते हैं? 'अंचरा पसारि' मागी हुई विनय भरी भीख की झोली क्या खाली रह सकती है? पुण्यमयी व्रज-भूमि की गोद में, नन्दनन्दन के समीप, प्रियतम श्यामसुन्दर के पल-पल प्रफुल्लित मुख-सरोज के दर्शन से ऊँची कामना और क्या होगी! भले ही इसके लिये अहीर की सी छोटी जाति में जन्म लेना पड़े? 'दधि के दान मिस व्रज की बीथिनि में झकझोरनि अंग अंग कौ परसिबौ' तभी तो सम्भव है और तभी 'सरद रैनि रस रास कौ बिलसिवौ'।

छीतस्वामी सरीखे अन्तरङ्ग भक्त सखा ही ऐसी पुण्यकामना करने और उसके प्रतिफलित सुख के आस्वाद पाने में समर्थ हैं। यही भाव और भक्ति की आत्माभिव्यक्ति और आत्मनिष्ठा का उज्ज्वल स्वरूप है।

" छीतस्वामी "

वर्षोत्सव

✻

मंगलाचरण—

१

राधिका-रवॅन, गिरिधरन, गोपीनाथ,
मदनमोहन, कृष्ण, नटवर, विहारी ।
रासक्रीडा-रसिक, व्रजजुवति-प्रानपति,
सकल दुखहरन, गो-गननि चारी ॥
सुखकरन, जग-तरन, नंद-नंदन, नवल
गोप-पति-नारि-वल्लभ मुरारी ।
' छीत-स्वामी ' सकल जीव उद्धरन-हित
प्रगट वल्लव-सदन दनुज-हारी ॥

राधाष्टमी (बधाई)–

२

[कल्याण

सकल भुवन की सुंदरता वृषभानु गोप कें आई री ! ।
जाकौ जसु गावत सिव, मुनिजन, निगम, चतुरमुख भाई री ! ॥
नवल किसोरी, रूप गुन स्यामा कमला-सी ललचाई री ! ।
प्रगटे पुरुषोत्तम श्रीराधा द्वै विध रूप बनाई री ! ॥
उमगे दान देत विप्रनि कौं जसु जो रह्यो जग छाई री ! ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर कौ चेरौ जुग-जुग यह जसु गाई री ! ॥

रास–

३

[बसंत

मुकुलित बकुल मधुप-कुल कूजे, प्रफुलित कमल गुलाब फूले ।
मंगल गान करत कोकिल-कुल नव मालती लता लगि झूले ॥
आइ जुवति-जूथ रास-मंडल खेलत स्याम तरनिजा-कूले ।
'छीत-स्वामी' विहरत वृंदावन गिरिधर लाल कलपतरु - मूले ॥

४

[मलार

नागरी नवरंग कुँवरि मोहन-सँग नाँचै ।
कटि-तट पट किंकिनी कल नूपुर-रव रुनझुन करें
निर्तत, करत चपल चरन-पात घात साँचै ॥
उदित मुदित गगन सघन घोरत घन-भेद भेद,
कोकिल कुल गान करति पंचम सुर बाँचै ॥

'छीत-स्वामी' गोवर्धननाथ हाथ वितरत रस,
वर विलास वृंदावन-वास प्रेम राँचैं ॥

५

[ईमन

लाल-संग रास-रंग लेत मान रसिक रवॅनि,
ग्रग्रता, ग्रग्रता, तत तत तत थेई थेई गति लीने ॥
सरिगमपधनी, गमपधनी धुनि सुनि व्रजराज-कुंवर गावत री !
अतिगति जतिभेदसहित तानने ननननननन अनिअनि गति लीने॥
उदित मुदित सरदचंद, बंद छुटे कंचुकी के
वैभव भुव निरखि-निरखि कोटि काम हीने ॥
विहरत बन रास-विलास, दंपति वर ईषद हास
'छीत-स्वामी' गिरिधर रस-बस करि लीने ॥

गो-क्रीडा–

६

[सारंग

खरिक खिलावत गांइनि ठाढ़े ।
इत नँदलाल ललित, लरिका उत गोप महाबल गाढ़े ॥
सुनि निज नाम ने चुकी, निकसी, बल बछरा जब काढ़े ।
अपनी जननी के जानु लागि पय पीवत नवल असाढ़े ॥
नाचत, गावत, बसन फिरावत, गिरि की सिखर पर चाढ़े ।
'छीत-स्वामी' हम जब तें बसे व्रज सैल सकल सुख बाढ़े ॥

श्रीगुसांइजी की बधाई–

७

[देवगंधार

जब तें भूतल प्रगट भए ।
तब तें सुख बरसत सबहिनि पर आनँद अमित दए ॥

श्रीवल्लभ-कुल-कमल अमित रवि, अनुदिन उदित भए ।
' छीत-स्वामी ' गिरिधरन श्रीविट्ठल जुग-जुग राज जए ॥

८

[देवगंधार

जै श्रीवल्लभ–राजकुमार ।
पर पाखंड-कपट खंडन कर, सकल वेद-धुर-धार ॥

परम पुनीत, तपोनिधि, पावन, तन-सोभा जित मार ।
दुरित दुरेत अचेत प्रेत मति हतित पतित-उद्धार[१] ॥

निज मति सुदृढ सुकृत कृत हरि-पद नव विध भजन-प्रकार ।
निज मुख कथित कृष्ण-लीलामृत सकल जीव-निस्तार ॥

नहीं मति नाथ ! कहाँ लौं बरनों अगनित गुन-गन सार ।
' छीत-स्वामी ' गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रगट कृष्ण-अवतार ॥

९

[देवगंधार

अब कें द्विजवर व्है सुख दीनौ ।
तब कें नंद जसोदा-नंदन व्है हरि आनँद कीनौ ॥

---

१ देखो ' हतित पतित ' की वार्ता स ७०
(दो सौ बावन वै वार्ता पत्र ४८१ कांकरोली प्रकाशन)

तब कीनौ गोपाल-रूप, अब वेद समृति दृढ कीनो ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्तकृपा-रस भीनौ ॥

१०

[सारंग

प्रगट ब्रह्म पूरन या कलि में, प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ ।
पतित-पावन मनभावन, जे पग धरत हैं तिन ही, माथ ॥
भवसागर अपार तरिवे कों अवलंबन दे तिन ही हाथ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल गावत गुन-गन-गाथ ॥

११

[विलावल

सुखद रसरूप श्रीविट्ठलेस राइ ।
वेद वदत पूरन पुरुषोत्तम, श्रीवल्लभ-गृह प्रगटे आइ ॥
अद्भुत रूप, अलौकिक महिमा, अति सुंदर मन[1] सहज सुभाइ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल अतुलित[2] महिमा कहिय न जाइ ॥

१२

[सारंग

हरि-मुख-अनल, सकल सुर मुनि-मुख
तिन-तन धर्म धारि धुर लीनी ।
थिर राख्यौ मख-भाग लोक सुर
निज मरजाद भक्ति भली कीनी ॥

---

१ वर २ अगनित

तब हीं तें सगुन-उपासन सेवा
भई पत विमल लोक, सुर-हीनी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
सब सुख-निधि अपुने कों दीनी ।

१३

[सारंग

श्रीविट्ठलनाथ अनाथके नाथ, सनाथ भए अपने जिये री ।
नैननि नेह जनावत ताको जाही के वसत वल्लभ हिये री ॥
श्रीपुरुषोत्तम प्रगट भए हैं, अभय दान भक्तनि दिये री ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल ते वड़भागि, भजन किये री ॥

१४

[सारंग

पिय नवरंग गोवर्धनधारी ।
अभिनव रस सिंगार सरस श्रीविट्ठल प्रभु चित-चारी ।
सुखद सरूप, सुखद हित चितवनि, वृंदाविपिन-विहारी ।
'छीत-स्वामी' सुख सुलभ सुपथ श्रीवल्लभ-मत अनुसारी ॥

१५

[सारंग

जे वसुदेव किये पूरन तप, तेइ फल फलित श्रीवल्लभ-देह ।
जे गोपाल हुते गोकुल में तेइ अब आनि वसे करि[1] गेह ॥

---

[1] निज

जे वे गोप-वधू हीं व्रज में तेइ अब वेद-रिचा भई येह ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल तेइ एइ, एइ तेइ, कछु
न सँदेह ॥*

१६

[हमीर

प्रगटे माई ! सकल कला गुन चंद ।
श्रीवल्लभ-सुत अगाध सुंदर, श्रीविट्ठल सुख-कंद ॥
बरसत भक्ति-प्रवाह सुधा-रस पीवत मंत सुछंद ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल पूरन परमानंद ॥

१७

[ईमन

श्रीवल्लभ-लाल के गुन गाऊं ।
माधुरी-माधुरी मूरति देखि आनंद-सदन
मदनमोहन नैननि सैननि पाऊं ॥
श्रीवल्लभ-नंदन जगत-वंदन, सीतल-चंदन,
ताप-हरन एई महाप्रभु इष्ट-करन, चरननि चित लाऊं ।
'छीत-स्वामी' मन वच क्रम, परम धरम,
एई मेरें लाडिलौ लडाऊं ॥

१८

[ईमन

गए पाप ताप दूरि, देखत दरस परसि चरन ।
हौं तो एक पतित, तुम्हारौ पतित पावन बिरुद,
हौ तुम जगत के उद्धरन ॥

---

* छीतस्वामी-वार्ता (दो. वै वार्ता तृ०भाग पत्र २९१ काकरोली प्रकाशन)

तब हीं तें सगुन-उपासन सेवा
भई पत विमल लोक, सुर-हीनी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
सब सुख-निधि अपुने कों दीनी ।

१३

[सारंग

श्रीविट्ठलनाथ अनाथके नाथ, सनाथ भए अपने जिये री ।
नैननि नेह जनावत ताको जाही के बसन वल्लभ हिये री ॥
श्रीपुरुषोत्तम प्रगट भए हैं, अभय दान भक्तनि दिये री ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल ते बड़भागि, भजन किये री ॥

१४

[सारंग

पिय नवरंग गोवर्धनधारी ।
अभिनव रस सिंगार सरस श्रीविट्ठल प्रभु चित-चारी ।
सुखद सरूप, सुखद हित चितवनि, वृंदाविपिन-विहारी ।
'छीत-स्वामी' सुख सुलभ सुपथ श्रीवल्लभ-मत अनुसारी ॥

१५

[सारंग

जे वसुदेव किये पूरन तप, तेइ फल फलित श्रीवल्लभ-देह ।
जे गोपाल हुते गोकुल में तेइ अब आनि बसे करि[1] गेह ॥

---

१ निज

२१

[कान्हरो

श्रीवल्लभ–गृह विट्ठल प्रगटे सकल भक्तनि हितकारी ।
सुनि उमगीं नारी प्रफुलित मन पहिरें झूमक मारी ॥
कंचन थार साजि लिये कर मोतिनि मांग सँवारी ।
रूप देखि रतिपति मोहित व्है कोटि भाँति बलिहारी ॥
दान देत हैं श्रीवल्लभ प्रभु जो जाके मन धारी ।
'छीत–स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्तनि के हितकारी ॥

२२

[सारंग

श्रीविट्ठलेस चरन चारु पंकज–मकरंद लुब्ध
गोकुल में सनक संत करत नित्य केली ।
पावन जहाँ चरनोदक संतत सुरसरी बहै
ताप दूर दहै बदन–निंदु बेली ॥
भूतल कृष्णावतार, प्रगट ब्रह्म निराकार,
सींचत हरि–भक्ति निराधार निर्मल बेली ।
'छीत–स्वामी' गिरिधर लीला सब फेरि करत
धेनु–दुह गोप–निवास संग हाथ पाट सेली ॥

२३

[सारंग

श्रीगोकुल में प्रगट विराजें श्रीविट्ठल पुरुषोत्तम रूप ।
दरसत ही गए पाप सबनि के हैं ए अखिल लोक के भूप ॥

स्तुति[1] सेस करि न सकत, सकल कला पूरन तुम
जानत हौं तिहारी सब विध अनुसरन ।
'छीत-स्वामी' गिरिवरधर तैसेई श्रीविट्ठलेस
तुम्हारी हौ जनम-जनम सरन ॥

१९

[कान्हरो

प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ आजु धनि भाग हमारे ।
दरसत त्रिविध ताप तन तें गए, भवसागर तें तारे ॥
साँवरे अंग वदन पूरन चँद प्रगट[2] होत मानों जगत उजारे ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल वल्लभ-नंद[3] दुलारे ।

२०

[कान्हरो

श्रीविट्ठल प्रभु जगत-उधारन देखे भूतल आए री ।
नख-सिख सुंदर रूप कहा कहौं ? कोटिक काम लजाए री[4] ॥
अनेक जीव किये जु कृतारथ, स्रवन सुनत उठि धाए री ।
सरन-मंत्र स्रवननि सुनाइके पुरुषोत्तम कर गहाए री ॥
सेस सहस्रमुख निसि-दिन गावत तोऊ पार न पाए री ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रेम प्रतीति बंधाए री ॥

---

१ असित सेत कहि न परत गुन-निधान, जानत हौं
सकल कला पूरन और तेई आगिन सरन । (पाठभेद)

२ देखियत जग उजियारे (वंध, ६।४)

३ राज-

४ जनु जाए री

२७

[कान्हरो

देखत तन के त्रिविध ताप जात, श्रीवल्लभ-नंदन चंद।
भजि गए सब दुरित दूरि, भक्तनि की जीवन-मूरि
मानिनी आनंद-कंद ॥
श्रीविट्ठलनाथ विलोकि बढ्यौ सुख-सिंधु की उठत तरंग
मिटि गए दुख-दुंद ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठलेस के
गुन गावत स्तुति-छंद ॥

२८

[केदारो

श्रीविट्ठल प्रगटे ब्रज-नाथ।
नंद-नँदन कलियुग में आए निज-जन किए सनाथ ॥
तब असुरनि कौ नाम कियौ हरि, अब माया-मत नासे।
तब गोपीजन कों सुख दीनों, अब निज भक्तनि पासे ॥
तब कें वेद-पथ छांडि रास-मिस नाना भांति बताए।
अब कें स्त्री-सूद्रादिक सब कों ब्रह्म-सम्बन्ध कराए ॥
इहि विध प्रगट करी ब्रज-लीला श्रीवल्लभराज-दुलारे।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल इन कों वेद पुकारे ॥

२९

[कल्यान

बिहरत सातौं रूप धरें।
सदा प्रगट श्रीवल्लभ-नंदन द्विज-कुल भक्ति बरें ॥

सेवा-रीति बताई विधि-सों अपने मन की परम अनूप ।
'छीत-स्वामी' श्रीविट्ठल-आगें और पंथ जैसें जल-कूप ॥

२४

[देवगधार

श्रीवल्लभ-नंदन की बलि जाऊं ।
जे गोवर्धन बसत निरंतर गोकुल जिनि कौ गाऊं ॥
जे द्वारावती जदुकुल-नाइक, मथुरा जिनि कौं ठाऊं ।
जे वृंदावन केलि करत हैं निरखत छबि न अघाऊं ॥
वामन-रूप छल्यौ बलिराजा, तिनि के चरन चित लाऊं ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल कहियत जिन कौ नाऊं ॥

२५

[बिलावल

प्रगट प्राची दिसि पूरन चंद ।
प्रगट भए श्रीवल्लभ के गृह, सुर-नर-मुनि-मन भयौ आनंद ॥
अद्भुत रूप, अलौकिक महिमा, जननी तात यों भाख्यौ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल लोक वेद-मत राख्यौ ॥

२६

[बिलावल

धनि-धनि श्रीवल्लभ जू के नंदन श्रीविठ्ठल, चरन सदा निज-पावन ।
जुगपदकमल विराजमान अति महिमा बहुत सदा मुनि गावन ॥
सेवा करौ, भजौ मन दृढ सोइ त्रिविध भांति के ताप नसावन ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल बरसत कृपा सबै जिय-भावन ॥

२७

[कान्हरो

देखत तन के त्रिविध ताप जात, श्रीवल्लभ-नंदन चंद ।
भजि गए सब दुरित दूरि, भक्तनि की जीवन-मूरि
मानिनी आनंद-कंद ॥
श्रीविट्ठलनाथ विलोकि बढ्यौ सुख-सिंधु की उठत तरंग
मिटि गए दुख-दुंद ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठलेस के
गुन गावत स्रुति-छंद ॥

२८

[केदारो

श्रीविट्ठल प्रगटे व्रज-नाथ ।
नंद-नंदन कलियुग में आए निज-जन किए सनाथ ॥
तब असुरनि कौ नास कियौ हरि, अब माया-मत नासें ।
तब गोपीजन कों सुख दीनों, अब निज भक्तनि पासे ॥
तब कें वेद-पथ छांडि रास-मिस नाना भांति बताए ।
अब कें स्त्री-सूद्रादिक सब कों ब्रह्म-सम्बन्ध कराए ॥
इहि विध प्रगट करी व्रज-लीला श्रीवल्लभराज-दुलारे ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल इन कों वेद पुकारै ॥

२९

[कल्यान

बिहरत सातौं रूप धरें ।
सदा प्रगट श्रीवल्लभ-नंदन द्विज-कुल भक्ति बरें ॥

श्रीगिरिधर राजाधिराज व्रज राजत उदै करे।
श्रीगोविंद इंदु जग किरननि सींचत सुधा खरें॥
श्रीबालकृष्ण लोचन बिसाल देखि मन्मथ कोटि टरें।
गुन लावन्य दया करुना निधि श्रीगोकुलनाथ भरे॥
श्रीरघुपति, जदुपति, घनसाँवल फुनि जन सरन परें।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल जिहिं भजि अखिल तरें॥

३०

[कान्हरो

श्रीविट्ठल कौ जनमु भयौ सुनि व्रजजन अति सुख पाए री!
नानाविध सिंगार साजिके अति सुख में उठि धाए री!॥
निरखि मुखारविंद की सोभा कोटिक काम लजाए री।
नैन चकोर पीवत रस अमृत, तन की तपति मिटाए री॥
सुर नर मुनिजन थके बिमाननि कुसुमनि वृष्टि कराए री।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्तनि हित भुव आए री॥

३१

[कान्हरो

सुघर सहेली सब मिलि आवौ, गावौ मंगल गीत।
श्रीवल्लभ-गृह प्रगट भए हैं जो चाखत नवनीत॥
पौस असित नौमी कौ सुभदिन सरस लगै तहाँ सीत।
सौंधें कुमकुम करौ उबटनो पहिरावौ पट पीत॥
आँगन लीपौ चौक पुरावौ चीतौ भींत पछीत॥
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल बजत बधाई जग जीत॥

३२

[सारंग

विराजत वल्लभराज-कुमार ।
श्रीगिरिधर गोविंद सुखद, अति बालकृष्ण जु उदार ॥
व्रज-वल्लभ श्रीगोकुलेश हैं जस-सरूप निरधार ।
जीव अनेक किए जु कृतारथ महिमा अपरंपार ॥
श्रीरघुपति जदुपति भक्तनि के जीवन प्रान-आधार ।
श्रीघनस्याम मनोरथ पूरन सकल स्रुतिनि के सार ॥
कलिजुग-जन सब दुरित जानिके आए भुव हितकार ।
'छीत-स्वामी' विट्ठलेस-सुवन सब प्रगट कृष्ण-अवतार ॥

३३

[सारंग

विमल जस श्रीविट्ठलनाथ कौ ।
भुवन चतुर्दस मानों प्रगट भयौ महिमा स्रुतिगाथ कौ ॥
पतित सबै पावन करि लीने इहि प्रताप कुंज-हाथ कौ ॥
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल राखत सरन अनाथ कौ ॥

३४

[सारंग

लाडिले श्रीवल्लभराज-कुमार ।
बलि-बलि जाऊं मुखारविंद की सुंदर अति सुकुमार ॥
भागवत-रस मथि लोचन छाके करुना-सिंधु अपार ।
कहि सुबोधिनी निज-जन पोषत अमृत बचन-उद्गार ॥

निज स्वामिनी भाव निधि झलकत निसि-दिन करत विहार ।
सदा करत हैं श्रीगिरिराज की सेवा पुष्टि-प्रकार ॥
इन के चरन सरन जे आए मिटे सकल झंजार ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल सकल वेद कौ सार ॥

३५

[काहन्रो

विट्ठलनाथ चंद ऊग्यौ जग में भक्ति चांदिनी छाइ रही ।
अंधकार जाके मन के मिटि गए सो पिय के उर मांझ रही ॥
निसि-दिन नाम जपों या मुख तें श्रीवल्लभ विट्ठलेस कही ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल अब जो भई सो कबु न भई ॥

३६

[सारंग

गो-वल्लभ, गोवर्धन-वल्लभ श्रीवल्लभ गुन गने न जाईं ।
भुव की रेनु, तरैयाँ नभ की, घन की बूंदैं परत लखाईं ॥
जिनके चरन कमल-रज वंदित होत सबै चितचाईं ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल नंद-नँदन की सब परछाँईं ॥

३७

[सारंग

गांइनि सों रति गोकुल सों रति गोवर्धन सों प्रीति निवाही ।
श्रीगोपाल-चरन-सेवारत गोप-सखा सब अमित[1] अथाही ॥
गो-वानी जु वेद की कहियतु श्रीभागवत भलै अवगाही ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल गोधन[2] की खुर-रेनु सराही ॥

---

१ अनत २ गाइनि

३८

[सारंग

नवरंग[1] गिरिगोवर्धन-धारी ।
बलि-बलि जाऊं मुखारविंद की सुहृद-सुहित सुखकारी ॥
सहज उदार, प्रसन्न, कृपानिधि दरस-परस दुखहारी ।
अतुल प्रताप तनिक तुलसीदल मानत सेवा भारी ॥
'छीत-स्वामी' नवरंग विमद जसु गावति गोकुल-नारी ।
कहा बरनों गुन-गाथ नाथ कौ ? श्रीविट्ठल हृदै-विहारी ॥

३९

[विहागरो

भई अब गिरिधर सों पहिचान ।
कपट रूप धरि छलन[1] गयो हौं पुरुषोत्तम नहिं जान ॥
छोटौ बडौ कछु नहिं जानत[2] छयौ तिमिर-अग्यान ।
'छीत-स्वामी' देखत अपनायौ श्रीविट्ठल कृपा-निधान ॥*

४०

[विभास

हमारे श्रीविट्ठलनाथ धनी ।
भव-सागर तें काढ़ि महाप्रभु राखि सरन अपनी ॥
निसि-दिन तिहारौ नामु रटत हैं सेस सहस्र-फनी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल त्रिभुवन-मुकुट-मनी ॥

---

१ मेरी अखियों के भूषन गिरिधारी (पाठभेद)

२ छल के आयो   ३ जाकों छाइ रह्यौ अग्यान

* छीत-स्वामी की वार्ता (दो वै की वार्ता तृ भाग पत्र २८८
(कांकरोली प्रकाशन)

४१

[गौडी

हौं चरणातपत्र की छहियाँ ।
कृपा-सिंधु श्रीवल्लभ-नंदन बह्यौ जात राख्यौ गहि बहियाँ ॥
नव नख चंद-किरन[1] मंडल छवि हरत ताप, सुमिरत मन माहियाँ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल सुजस बखान[2] सकति स्रुति नाहियाँ ॥*

४२

[ईमन

जब लगि जमुना गांइ गोवर्धन गोकुल गांउ गुसाँई ।
जब लगि श्रीभागवत कथा-रस तब लगि कलिजुग नाँई ॥
जब लगि सेवक, सेवा भाव-रस, नंद-नंदन सों प्रीति लखाँई ।
'छीत-स्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रगटे भक्तनि कों सुखदाँई ॥

४३

[नट

हम तौ श्रीविट्ठलनाथ-उपासी ।
सदा सेवौं श्रीवल्लभ-नंदन कहा करौं जाइ कासी ॥
छांडि नाथ औरु रुचि उपजावै, सो कहिये असुरासी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल वानी निगम-प्रकासी ॥

---

१ शरद मंडळ छवि हरत ताप

२ बखानत स्रुति २ नहिया (प्रचलित पाठ)

* छीतस्वामी-वार्ता (,, वही-पत्र २९०)

४४

[गौडी

बोलैं श्री वल्लभ-नंदन मेरे ।
अब कछु मोहिं नांहिनें करनो गहे चरन चित चेरे ॥
इहै सरूप सुकृत सब कौ फल, कित कोउ और बतावै ।
सो-जो तृषित सुरसरी के तट कुमति कूप खनावै ॥
जुग-जुग राज करो भक्तनि हित वेद पुरान बखानै ।
' छीत-स्वामी ' गिरिधरन श्रीविट्ठल सोइ गोवर्धन रानै ॥

४५

[कान्हरो

श्रीविट्ठलनाथ-कृपा-छवि ऊपर सर्वसु न्यौछावरि लै कीनौं ।
कोटि-कोटि यों सुनत ही मानत गुन अनेक ज्यों गहि लीनौ ॥
ताही के वे बस जु सदा हैं जोही पिया के रँग भीनौं ।
' छीत-स्वामी ' गिरिधरन श्रीविट्ठल कहा कहौं ? जो सुख दीनौं ॥

४६

[कान्हरो

श्रीविट्ठलनाथ सबनि सुखदाई मो मन माई ! अटक्यौ री ।
लोक-लाज कुल की मरजादा मो अब सब लै पटक्यौ री ॥
जब तें बदन की सोभा देखी तब तें चित व्हाँ ठटक्यौ री ।
' छीत-स्वामी ' गिरिधरन श्रीविट्ठल लगे नैननि में, न खटक्यौ री ॥

४७

[कान्हरो

श्रीविट्ठलनाथ बसत जिय जाके ताकी प्रीति रीति छवि न्यारी ।
प्रफुलित बदन-कांति, करुनामय नैननि में झलकें गिरिधारी ॥

उग्र स्वभाव, परम पुरुषारथ स्वारथ–लेम नहीं संसारी ।
आनंद रूप करत इक छिन में हरि जू की कथा कहत विस्तारी ।।
मन-वच-क्रम जासों सँग कीनों पायौ व्रज-जुवतिनि सुखकारी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल गुन-निधान, गोवर्धनधारी ।।

४८

[कान्हरो

रसिकराइ श्रीवल्लभ-सुत के भजहु चरनकमल सुख-दाइक ।
बाल अकाल (?) रहित पुरुषोत्तम प्रगट भए श्रीविट्ठल नाइक ।।
देवलोक, भुव लोक, रसातल उपमा कों नाहिन कोउ लाइक ।
चार पदारथ महलनि पावें अष्ट महासिद्धि द्वारें पाइक ।।
वदन-इंदु बरषत निसि-वासर वचन-सुधारस भक्ति बधाइक ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल पावन पतित, निगम जस गाइक।।

४९

[कल्यान

व्रज में श्रीविट्ठलनाथ बिराजैं ।
जाकौ परम मनोहर श्रीमुख देखत ही अघ भाजैं ।।
जाके पद-प्रताप तें निरभै सेवक जन सब गाजैं ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्तनि के हित राजैं ।।

५०

[कल्यान

जाचौं श्रीविट्ठलनाथ गुसाँई ।
मन-क्रम-वच मेरे श्रीविट्ठल और न दूजौ साँई ।।

औरै जाचौ जननी लाजै, करौं इनके मन भाँई।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल तन-त्रयताप नसाँई ॥

८१

[कल्यान

गाऊं श्रीवल्लभ-नंदन के गुन, लाऊं सदा मन अंग सगेजनि।
पाऊं प्रेम-प्रसाद ततच्छित्तु, ध्याऊं गोपाल गहे चित चोजनि ॥
नाऊं सीस, लड्याऊं लालै, आयो सरन यहै जु परोजनि।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल ऊपर वारों कोटि मनोजनि ॥

वसन्त—

८२

[वसन्त

गोवर्धन की सिखर चारु पर फूली नव माधुरी जाई।
मुकुलित फल दल सघन मंजरी सुमनस-सोभा बहुतै भाई ॥
कुसुमित कुंज—पुंज द्रोणी द्रुम निर्झर झरत अनेकै ठांई।
'छीत-स्वामी' व्रज-जुवति जूथ में विहरत तहाँ गोकुल के राई ॥

८३

[वसन्त

लाल ललित ललितादिक संग लियें
विहरत री वर वसंत रितु कला—सुजान।
फूलनि की कर गेंदुक लियें, पटकत पट उरज छियें
हसत लसत हिलिमिलि सब सकल (कला) गुन—निधान ॥

खेलत अति रस जु रह्यौ, रसना नहिं जात कह्यौ
निरखि परखि थकित रहे सघन गगन जान।
'छीत-स्वामी' गिरिधरनु, श्रीविठ्ठल-पद-पद्म-रेनु-
वर प्रताप महिमा तें करत कीरति गान ॥

५४

[वसन्त

आयौ रितु-राज साज, पंचमी वसंत आज
मौरे द्रुम अति अनूप अंब रहे फूली।
वेली लपटी तमाल, सेत पीत कुसुम लाल
उडवत रंग स्याम भाम भंवर रहे झूली ॥
रजनी सब भई स्वच्छ, सरिता सब बिमल पच्छ
उडुगन-पति अति अकास बरसत रस मूली।
जति, सति, सिद्ध साध, जित-तित तजि भाजे समाध
विमन जटी, तपसी भए मुनि मन गति भूली ॥
जुवति-जूथ करत केलि, स्यामा सुख-सिंधु झेलि
लाज लोक दई पेलि परसि पगनि कूली ॥
वाजत आवज, उपंग, वांसुरी, मृदंग, चंग
उह सुख 'छीत-स्वामी' निरखि, इच्छा भई लूली ॥

५५

[वसंत

वृंदावन विहरत व्रज-जुवति-जूथ संग फाग
व्रजपति व्रजराज-कुँवर परम मुदित रितु वसंत।

चोवा मृगमद अवीर, छिरकत तकि सुमन नीर
उडवत वंदन गुलाल निरखि मुख हसंत ॥
फूले बन उपबन वृच्छ वेल पुहुप कुंज लच्छ
गावत पिक, मोर, कीर, उपजत मन सुख लसंत ।
करत केलि रस विलास 'छीत-स्वामी' गिरिधर सुहास
श्रीविठ्ठलेस-पदप्रताप सुमिरत सब दुख खसंत ॥

धमार-

५६

[धनाश्री

सुख की साध सब लैहों मोहन ! जान न दैहों ॥ध्रुव०॥
मथि-मथि सौंधों धर्‌यौ भवन में सो अंगनि लपटैहों
ए निज-संगी सखा तुम्हारे देखौ अबै भजैहों ॥
क्यों-क्यों करि फागुन-दिन आयौ करिहों मन कौ भायौ ।
छांडों क्यों करि छैल छबीले ! सूनी बाखरि पायौ ॥
मो बागौ अति अनुरागौ झीनी पाग रुचिर सुखदाइक ।
याही तें न कहति लाडिले ! यहै छिरकिवे लाइक ॥
इत-उत हेरत कहा लाडिले ! चलौ हो गृह के महियाँ ।
सूधे सांचे कह्यो करौ किन नातरु गहिहों बहियाँ ॥
आजु सवेरे हौं उठि बैठी कुचनि कंचुकी दरकी ।
औ केसरि खोरत में मेरी फर-फर भुज दै फरकी ॥
सोई ब आनि बनी है प्यारे ! अगम जनाब जनायौ ।
जान न दैहों अयानी व्हैहों यह मूरति भल पायौ ॥

निपुन नागरी गुननि आगरी पीतांबर गहि लीनौ।
भरि अँकवारी कछु न विचारी भरकि वारनो दीनौ॥

कछू भेद श्रीदामा हू कौ, नातरु कहा बल इनकौ?
इत-उत फिरति अकेली, व्रज में मिलनिया गोपिनिकौ॥

भीतर-भीतर करति भांवतो सुनियत कछु किलकारी।
चित्रविचित्र झरोखनि मोखनि चलत कनक-पिचकारी॥

अबीर गुलाल घुमडी मडहा पर घुमडि रहे मडराए।
रितु वसंत वरषन कों बदरा अरुन सेत व्है आए॥

गोष-वृंद में हलधर ठाढे रोकि रहे निज पौरी।
ऊपर तें कृष्णागरु भरि-भरि डारति कनक-कमोरी॥

वरन-वरन भए वसन रंगमगे तव दाऊ अकुलाए।
तक लगाइ बलदाऊ पाए तोक अटा पे आए॥

सुवल उतरि सुधि गयौ दौरि जव कमलनि मार मचाई।
तिहि औसर तें न्याव भयौ है घर में वहुत लुगाई॥

तब अग्रज हसि कह्यौं भैया हो! कहो कहा मतौ कीजे।
दियें दरेरी चलौ इहि खिरकी छिंडाइ लाल कों लीजै॥

भरि-भरि फेटनि वूका वंदनि कूदि परे सब ग्वाला।
जुवति-जूथ में जुवति-भेष तहां राजत हे नंदलाला॥

वंस निसंक गहें कर अवला चपला ज्यों लपटाई।
पकरि लिए महावली कहावत भेदत-भेदत आई॥

चोवा, चंदन, अगरु, कुंकुमा सब अंगनि लपटाईं।
मांडि मांडि मुख सिथिल-विथिल करि भए एक समुदाई॥

फगुवा दैन कह्यौ मन भायौ मेवा बहुत मंगायौ ।
आगें काम साधि रही नीकें तब लालनि छिटकायौ ॥
बैठे सब बे बसन सँवारत वे चढि अटनि निहारे ।
सैननि में फुनि टेर देत हें अंचल हरि पर वारें ॥
'छीत-स्वामी' तिहि औसर कौ सुख क्योंहू न बरन्यौ जाई ।
देखि उजागर बाबा नंदै गिरिधर नंद दुराई ॥ २० ॥

८७

[सारंग

सुरंगी होरी खेलै साँवरो श्रीवृंदावन मांझ ।
व्रज की नवल जु नागरी, घिरि आँईं सब सांझ ॥
सरस बसंत सुहावनो, रितु आई सुखदेनु ।
माते मधुपा मधुपनी कोकिल-कुल कल वेनु ॥
फूले कमल कलिंदजा, केसू कुसुम सुरंग ।
चंपक बकुल गुलाब के सोंधे सिंधु-तरंग ॥
सुबल सुबाहु श्रीदामा पठयौ सखा पढाइ ।
बाजे साजे नवरँगी लीने मोल मढाइ ॥
रुंज, मुरज, डफ, बांसुरी, भेरिनि कौ भरपूरि ।
फूंकनि-फेरी फेरिके ऊंचे गई स्रुति-दूरि ॥
व्रज कौ प्रेम कहा कहौं ? केसरि सों घट पूरि ।
कंचन की पिचकाइयाँ मारत हैं तकि दूरि ॥
आँधी अधिक अबीर की, चोवा की मची कीच ।
फली रेल फुलेल की चंदन बंदन बीच ॥

निपुन नागरी गुननि आगरी पीतांबर गहि लीनौ।
भरि अँकवारी कछु न विचारी भरकि बारनो दीनौ॥

कछू भेद श्रीदामा हू कौ, नातरु कहा बल इनकौ ?
इत-उत फिरति अकेली, व्रज में मिलनिया गोपिनिकौ॥

भीतर-भीतर करति भांवतो सुनियत कछु किलकारी।
चित्रविचित्र झरोखनि मोखनि चलत कनक-पिचकारी॥

अबीर गुलाल घुमडी महहा पर घुमडि रहे मडराए।
रितु वसंत बरषन कौं बदरा अरुन सेत ह्वै आए॥

गोप-वृद में हलधर ठाढे रोकि रहे निज पौरी।
ऊपर तें कृष्णागरु भरि-भरि डारति कनक-कमौरी॥

वरन-वरन भए वसन रगमगे तब दाऊ अकुलाए।
तक लगाइ बलदाऊ पाए तोक अटा पे आए॥

सुबल उतरि झुधि गयौ दौरि जब कमलनि मार मचाई।
तिहि औसर तें न्याव भयौ है घर में बहुत लुगाई॥

तब अग्रज हसि कह्यौं भैया हो ! कहो कहा मतौ कीजै।
दियें दरेरी चलौ इहि खिरकी छिंडाइ लाल कौं लीजै॥

भरि-भरि फेटनि बूका बंदनि कूदि परे सब ग्वाला।
जुवति-जूथ में जुवति-भेष तहां राजत हे नदलाला॥

बंस निसंक गहें कर अबला चपला ज्यों लपटाई।
पकरि लिए महाबली कहावत भेदत-भेदत आई॥

चोवा, चंदन, अगरु, कुंकुमा सब अंगनि लपटाई।
मांडि मांडि मुख सिथिल-बिथिल करि भए एक समुदाई॥

फगुवा दैन कह्यौ मन भायौ मेवा बहुत मंगायौ ।
आगें काम साधि रही नीकें तब लालनि छिटकायौ ॥
बैठे सब वे बमन सँवारत वे चढ़ि अटनि निहारें ।
सैननि में फुनि टेर देत हें अंचल हरि पर वारें ॥
'छीत-स्वामी' तिहि औसर कौ सुख क्योंहू न बरन्यौ जाई ।
देखि उजागर बाबा नंदै गिरिधर नंद दुराई ॥ २० ॥

८७

[सारंग

सुरंगी होरी खेलै सौंवरो श्रीवृंदावन मांझ ।
ब्रज की नवल जु नागरी, घिरि आँईं सब सांझ ॥
सरस वसंत सुहावनो, रितु आई सुखदेनु ।
माते मधुपा मधुपनी कोकिल-कुल कल वेनु ॥
फूले कमल कलिंदजा, केसू कुसुम सुरंग ।
चंपक बकुल गुलाब के सोंधे सिंधु-तरंग ॥
सुबल सुबाहु श्रीदामा पठयौ सखा पढाइ ।
बाजे साजे नवरँगी लीने मोल मढाइ ॥
रुंज, मुरज, डफ, बांसुरी, भेरिनि कौ भरपूरि ।
फूंकनि-फेरी फेरिके ऊंचे गई स्रुति-दूरि ॥
ब्रज कौ प्रेम कहा कहों ? केसरि सों घट पूरि ।
कचन की पिचकाइयाँ मारत हैं तकि दूरि ॥
आँधी अधिक अबीर की, चोवा की मची कीच ।
फली रेल फुलेल की चंदन बदन बीच ॥

ब्रज की नवल जु नागरी सुंदर सुर उदार।
खेलन आईं सब मिलीं श्रीराधा के दरबार ॥

फूल-डंडा गहि आपने मारत बाँह उठाइ।
चंचल अंचल फरहरै पैनें नैन चलाइ ॥

श्रीराधा की प्रिय सखी ललिता लोलसुभाइ।
छल करि छैले छिरकिके हँसि भाजी डहकाइ ॥

नारी कौ भेष बनाइके पठयौ सखा सिखाइ।
अति ही अधिक कहा बनी ललिता भेंटें जाइ ॥

गेंदुक कीनी फूल की लीनी श्रीराधा हाथ।
आइ अचानक औंचका तकि मारे ब्रजनाथ ॥

ब्रज की वीथिनि साँकरी उत जमुना कौ घाट।
बल करि सहाइ सबै जुरी दीने गाढे कपाट ॥

हलधर वीर महाबली तुम सांचे बलरासि।
बल कौ बल जु कहा भयौ ? गहि बांधे भुज-पासि ॥

नैननि अंजन आंजिकै सोंधौ ऊपर ढारि।
पांइ परि द्वार पठै दए रस की रासि विचारि ॥

हँसि भाजी सब दे दगा आवन दीने औरि।
मदनगोपाल बुलाइके गहि लीने बरजोरि ॥

गिरिधारयौ कर वाम सों, खर मारयौ गहि पांइ।
तन कौ भार कहा भयौ, ललिता लेत उठाइ ॥

घर में घेरि सबै चलीं राधा कौ सँग लेत।
दोउ जन खेलि, मिलाइके नैननि कों सुख देत ॥

तब ललिता हँसि यों कह्यौ श्रीराधा कों सिर नाइ।
नीलांबर मुख ढांपिके रही मोहों मुसिकाइ ॥

इत श्रीदामा अचगरौ, उत ललिता अति लोल ।
बीच विसाखा साखि दै मुरली मांगत ओल ॥

विसवासी वृषभान कौ मदनसखा वाकौ नॉइ।
स्याम मते कौ मिलनिया वस कीनों सब गांइ ॥

पठयो मदन बसीठ ही ढीठ महामद लोल।
छिन औरै छिन और सों छाक्यौ छैल दुछोल ॥

मदना ! मदनगोपाल कों हलधर कों लै आइ ।
श्रीराधा के दिसि जाइके चाँप्यौ है हँसि पांइ ॥

श्रीदामा हँसि यों कह्यौ मेवा देहु मँगाइ ।
नैकु हमारे स्याम कों आनन कौ मधु प्याइ ॥

× × ×

राधा माधौ बैठारे व्रजरानी की गोद।
भाग सुहाग सबै बढ्यौं खेलत फाग विनोद ॥

भूषन देति जसोमती पहुँची, पांच पचेल।
टीका, टीक, टिकावली, हीरा–हार, हमेल ॥

श्रीविट्ठल पद-पद्म की पावन रेनु-प्रताप।
'छीत–स्वामी' गिरिधर मिले मेटे तन के ताप ॥

फाग (होरी)-

५८

[विभास

मोहन प्रात ही खेलत होरी ।
चोबा चंदन अगर कुमकुमा, केसरि अवीर लिए भरि झोरी ॥
कंचन की पिचकारी भरिभरि छिटकीं सकल किसोरी ।
मुख मॉडत, गारी दै भॉडत, पहिरावत बरजोरी ॥
बाजत ताल मृदंग अघोटी, बिच मुरली धुनि थोरी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर सँग क्रीडत, इहिविध सब मिलि गोरी ॥

५९

[जैतश्री

रसिक फागु खेलै नवल नागरी सों
सरस वर रितु-राज की रितु आई ॥
पवन मंद, अरविंद, मौर कुंद विकसे
विसद चंद, पिय नंद-सुत सुखदाई ॥
मधुप-टोल मधुलोल संग-संग डोल
पिकनि बोल निरमोल स्तुतिनि चारु गाई ।
रचित रास सों विलास जमुना पुलिन में
सघन वृंदाविपिन रही फूलि जाई ॥
अंग कनक बरनी सु करिनी बिराजै
गिरिधरन जुवराज गजराज-राई ॥
जुवति-अंसगामी मिले 'छीत-स्वामी'
कुनित वेनु, पद-रेनु वड भागि पाई ॥

फूल-मंडनी-

६०

[सारंग

फूलनि के भवन गिरिधर नवल नागरी
फूल-सिंगार करि अति ही राजै।
फूल की पाग सिर स्याम के राजही
फूल की माल हिय में विराजै ॥

फूल सारी, कंचुकी बनी फूल की
फूल लहँगा निरखि काम लाजै ।
'छीत-स्वामी' फूल-सदन प्यारी सदा,
विलसि मिलवत अंग काम दाजै ॥

६१

[सारंग

नंद-नँदन, वृषभानु-नंदिनी बैठे फूल-मंडनी राजे ।
फूलनि के खंभ फूलनि की तिवारी
फूलनि के परदा अति छवि छाजें ॥
फूलनि के चौक, फूलनि की अटारी
फूलनि के बंगला सुख साजें।
ता पर कलसा फूलनि के फूलनि के फोंदना विराजें ॥
फूल सिंगार प्यारी तन सोहत
मदनगोपाल रीझिवे काजें।
'छीत-स्वामी' गिरिधर छवि निरखत
रमा-सहित, रतिपति जिय लाजें ॥

हिंडोरा—

६२

[हमीर

हो माई ! झूलत रंगभरे सुरँग हिंडोरना ।
तैसिय रितु सावन मनभावन, हरियारी भूमि,
तैसेई उमगे बादर घन घोरना ॥
तैसोई विश्वकर्मा सुघर अद्भुत मनिमानिक-खचित
रचित हीरा ठौर-ठौर राखे मोहना ।
'छीत-स्वामी' गिरिवरधर लीला विस्तार करत
तैसेई मधुर-मधुर गोपी देति झोलना ॥

६३

[केदारो

श्रीराधा[1] के संग सुभग गिरिवरधरन लाल
ललित झूलत हैं आनँद भरि सुरंग नव हिंडोरैं ।
दोउ जन अभिराम स्याम स्यामा छबि निरखि-निरखि
तमसि दामिनि मानों जात घन घोरैं ॥
सोभित अति पीत वसन, उपरेना उडत ऊपर
अरुन चारु चटकीली चूनरी रँग बोरैं ।
'छीत-स्वामी' जल-सुवनि अकस किए बरसत हैं
रसबस सुख-रास सरस ब्रजजन-चित चोरैं ॥

---

१ स्यामा के

६४

[ईमन

*रमकि-झमकि झूलत में झमकि मेह आयौ
नहीं सुझत बातनि में।
नव पल्लव संकुलित फूलफल बरन-बरन
द्रुम लतानि तर ठाढे, भयो है बचाउ पातनि में॥
मंद-मंद झुलवति खंभनि लागि ओढें अंबर निज हातनि में।
'छीत-स्वामी' गिरिधारी, दोऊ भीज्यौ वागौ सारी,
भंवरनि की भीर भारी, टारी न टरत क्योंहू
प्रगटी छबीली छटा निज-गातनि में॥

६५

[मल्हार

झूलत श्रीवल्लभराज-कुमार।
सुर सबैं मिलि देखन आए आनँद बढ्यौ अपार॥
हेम हीरा के खंभ जडाए, लटकत मुकता-हार।
आप झुलावत औरे झुलवत देदै दाँउ उभार॥
गृह-गृह ते सब देखन आई गावत मंगलचार।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल तन मन करों बलिहार॥

* मुद्रित कीर्तनों में यह पद 'कृष्णदास' की छाप से छप गया है।

पवित्रा—

६६

[सारंग

+पवित्रा पहिरत गिरिधरलाल ।
तीनों लोक पवित्र किये है सुंदर नैनविसाल ॥
कहा कहों ? अँग-अँग की सोभा उर राजत वनमाल ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल विहरत बाल गोपाल ॥

राखी—

६७

[सारंग

*मात[1] जसोदा राखी बांधति बल कें अरु श्रीगोपाल कें ।
कंचन थार में कुंकुम अच्छित, तिलकु करति नँदलाल कें ।
नारिकेल अंबर आभूषन वारति मुकता-माल कें ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर-मुख निरखति बलि-बलि नैन विसाल कें ॥

इति वर्षोत्सव-पद

+ इसी तुकसे कुंभनदास का भी एक प्रथक पद है ।
देखो (कुंमनदास पद-सग्रह स १२१ । कांकरोली प्रकाशन)

* इस पद का अर्धांश 'कुम्भनदास' कृत ऐसे ही पद से मिलता है । आगे प्रथक् २ है । (देखो-कुम्भनदास पद-समह । स १२५, काकरोली प्रकाशन)

१ जननी (वन्ध ६ । ४-१८ क.)

लीला

जगावनो-

६८

[भैरो

प्रात भयौ जागौ बलि मोहन! सुखदाई।
जननी कहै बार-बार उठौ प्रान के आधार
मेरे दुःखहार स्याम सुंदर कन्हाई ॥
दूध, दही, माखन, घृत, मिश्री, मेवा, बदाम
पकवान भांति-भांति विविध रस मलाई।
'छीत-स्वामी' गोवर्धनधारीलाल! भोजन करि
ग्वालनि के संग बन गो-चारन जाई ॥

६९

[भैरौ

भोर भयें नीके मुख हँसत दिखाइये।
राति के बिछुरे! दोउ पलकें मेरी वारि फेरि डारों,
नेंकु नैननि सिराइये ॥
कोमल उन्नत बाहु ऊपर अमृत-स्राव,
मेरी भेंटि छाती, छबि अधिक बढाइये।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन सकल गुन-निधान
कहा कहों मुख करि? प्रान ही तें पाइये ॥

७०

[मलार

बादर झूमि-झूमि बरसन लागे ।
दामिनी दमकत चौंकि स्याम घन-गरजन सुनि-सुनि जागे ॥
गोपी द्वारें ठाढी भींजति, मुख-देखन कारन अनुरागे ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल ओत-प्रोत रस पागे ॥

कलेऊ-

७१

[रामकली

करत कलेऊ मोहनलाल ।
माखन, मिसरी, दूध मलाई मेवा परम रसाल ॥
दधि-ओदन पकवान मिठाई खात खवावत ग्वाल ।
'छीत-स्वामी' वन गांई चरावन चले लटकि पसुपाल॥

७२

[मलार

करत है कलेऊ किलकि हँसि-हँसि दैदै तार
गरजत घन बरसत, देखि परत हैं पनारे
ग्वाल गांइ बछरनि लै द्वार ठाढे टेरत हैं,
एक कौर और लेहु नंद के दुलारे !
भोर ही तें झर लायौ कैसें वन जैए आजु,
कहत सखा हरि ! हलधर ! भोजन इहिं कीजै ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर विट्ठलेस, सुखकारी बेला,
लिए हौं जु ठाढी मीठौ दूध पीजै ॥

अभ्यङ्ग—

७३

[विलावल

मज्जन करत गोपाल चौकी पर ।
अति हि सुगंध फुलेल उबटनौ विविध भांति सब सौंज निकट धर ।
केसर चरचि न्हवाइ प्रथम पुनि अंग उबटनो करत सुंदर वर ।
व्रज-गोपी सब मंगल गावति अति प्रमुदित, मन अंगपरस कर ॥
एक जु अंगवस्त्र लै आई पोंछति हैं अँग, अति आनंद भर ।
पुनि सिंगार करन कों वैठे रत्नजटित चौकी आनी धर ॥
विविध भाँति वसन भूषन लै, करति सिंगार रुचि अपनी सुघर ॥
लै दर्पन श्रीमुख दिखरावति निरखि-निरखि हँसि लेत हैं मन हर ॥
भाँति-भाँति सामग्री करि-करि लै आईं अर्पत सब घर-घर ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन अगोगें अति आनँद प्रमुदित ता औसर ॥

शृंगार—

७४

[विलावल

भोग सिंगार मैया[१]मुनि मोकों श्रीविठ्ठलनाथ के हाथ को भावै ।
नीके न्हवाइ सिंगार करत हैं, आछी रुचि सों मोहि पाग बँधावै ॥
तातें सदा हौं ऊहीं रहत हों, तू डरि माखन दूध छिपावै ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल निरखि नैन त्रय ताप नसावै ॥

---

१ जसोदा मैया श्रीविठ्ठल०

क्रीडा–

७५

[बिलावल

जसोदा अति हरषित गुन गावै ।
मदनगोपाल झूलत हैं पलना आपुन वैठि झुलावै ॥
सिव विरंचि जाकों नहिं पावत ताकों लाड लडयावै ।
भाँति-भाँति के सुरँग खिलौना स्यामसुंदर कों खिलावै ॥
माखन मिश्री और मलाई अंगुरिनि करिके चखावै ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल रुचिकर सो कर पावैं ॥

७६

[विभास

सुंदर घनस्यामलाल, पंकज लोचन विसाल,
आँगनि व्रजरानी जू के ठुमकि-ठुमकि धावै ।
पहुंची कर बनी चारु, कंठ में विचित्र हारु
लटकत लटकें लिलारु, कहत न वनि आवै ॥
रुनन झुनन धरत पाँव, किंकिनी विचित्र राव,
नूपुर-धुनि सुनत स्रवन आनँद वढावै ।
'छीत-स्वामी' गिरिवरधर अंग-अंग मदन-मूरति
ठाढी व्रज-जुवति-जन मन में सचु पावै ॥

छाक (वनभोजन)—

७७

[सारंग

भोजन करत नंदलाल, संग लिए ग्वालबाल
करत विविध ख्याल, बंसीबट–छैयाँ ॥
पातनि पे धरत भात, दधि सिखरन लिए हाथ।
नाँचत मुसिकात जात, साँवरों कन्हैयाँ ॥
विंजन सब भाँति-भाँत, अनुपम कछु कहि न जात,
रुचि सों लै स्याम खात मुदित पठई मैंयाँ।
'छीत–स्वामी' गिरिवरधर मंडल–मधि बीच सोहैं
मन मोहैं निरखि–निरखि लेत हैं बलैयाँ ॥

भोजन—

७८

[सारंग

भोजन करि उठे पिय प्यारी।
कंचन नग जराउ की झारी जमुनोदक भरि लाई ललिता री ॥
मुख पखारि बीरी कर लीनी रुचि सों जुगल–बिहारी।
'छीत–स्वामी' नव कुंज–सदन में विहरत गिरिवरधारी ॥

व्रतचर्या—

७९

[भैरों

हारि मानी नाथ ! अंबर दीजैं।
नंदनंदन कुंवर रसिकवर मन–हरन
सुनहु गिरिवरधरन ! नीति कीजै ॥

सकल व्रज-नागरी दासी तुम्हरी, सदा
तन-मांझ सीत अति होत भींजैं ।
'छीत-स्वामी' अमित गुन-गननि आगरे !
विनती करति सबैं मानि लीजैं ।।

प्रभुस्वरूप-वर्णन-

८०

[मलार

नागर नंदलाल कुवँर मोरनि-सँग नांचै ।
कूजत कटि किंकिनी, कल नूपुर पग सांचै ।।
उरप[१] तिरप सुलप लेत, धरत चरन खांचै ।
बार-बार हरखि निरखि चंचल[२] गति रांचै ।।
उदित मुदित गरजत घन-भेद कौन बांचै ।
कोकिला-कल-गान करत पच सुरनि सांचै ।।
'छीत-स्वामी' गिरिवर-धर विट्ठलेस सांचै ।
विहरत वन रास-विलास वृंदावन मांचै ।।

८१

[सारंग

अति उदार मोहन मेरे निरखि नैंन फूले री ।
वीच-वीच वरुहा-चंद फूलनि के सेहरा माई !
कुंडल स्रवननि पर निगम निगम झूले री ।।

---

१ नृत्य करत चलत चरन पाद-घात सांचै (हि वध ५।१)
२ चलत (,)

कुंदन की माल गरें, चंदन कौ चित्र करें।
पीतांबर कटि वांधि अंगनि अनुकूले री!
'छीत-स्वामी' गिरिवरधर गाइनि कौ नाम टेरत
सव ठाढी भई (आइ) कदम तरु-मूले री ॥

८२

[आसावरी

आजु मैं देखे नंद-नँदन पिय ।
मोर-मुकुट मकराकृति कुंडल, निरखि-निरखि हुलस्यौ मेरौ हिय ॥
नटवर-भेष सुदेस स्याम कौ देखि, न मोहै ऐसी कौन तिय ?
'छीत-स्वामी' गिरिधरनलाल-छवि चित ही विचारत मुदित होत जिय ॥

८३

[आसावरी

भोर भएँ गिरिवरधर-भेखु देखु ।
सुभग कपोल, लोल लोचन-छवि निरखि नैन सफल करि लेखु ॥
नख-सिख रूप अनूप विसाल अँग मन्मथ-कोटि विसेखु ।
'छीत-स्वामी' रसरास-रसिक कों भाग वड़े फल इकटक पेखु ॥

८४

[सारंग

लाल माई ! पहिरें वसन वहु रंगनि ।
सीस टिपारौ मोर-पच्छवा कांछें कांछ कसि जंघनि ॥
पीत उपरेनी ओढें, कांधें कारी कामर निरखि लजात वसंतनि ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन नटवर वने मानों जुवति-रस-वस फंदनि

स्वामिनीस्वरूप-वर्णन-

८५

[रामकली

राधिका स्यामसुंदर कों प्यारी ।
नख-सिख अंग अनूप विराजित कोटि चंद-दुतिवारी ॥
इक छिनु संग न छाँडत मोहन निरखि-निरखि वलिहारी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर वस जाके सो वृषभानु-दुलारी ॥

८६

[टोडी

लाल सारी पहरि बैठी प्यारी, आधौ मुख ढांपि
ठाढे मोहन दृग निरखत ।
एक दिसि चंद-छवि, एक दिसि मानों आधौ सूरज अरुन में
यह छबि मन हिं विचारि लालन-मन हरखत ॥
कंठ कंठसिरी सोहै, कनक वाजूबंद हाथ मुक्तनि की माल गरें
अरु हमेल चौकी अँग कों सँवारि रूप-सुधा वारि वरखत ।
'छीत-स्वामी' गिरिवरधर रीझि-रीझि मगन भए
दुति निहारि वारि-वारि तन मन धन नागरि-जिय परखत ॥

८७

[कान्हरो

प्यारी ! तेरे बोले बोलैं कोकिला की कूका ।
रही छबि सु पकरि कुखु भरिया उखु न सांना (?)
अलिन उ मलिन सुने ते होत मूका ॥

स्यामाजू के मुख की कछुक छवि चोरि लई
उछर्यो है कमल सपदि देस डूका।
'छीत-स्वामी' गिरिधारी तैं ही रसबस कीन्हें
देखिवे कों वदन रहत ढिंग हूंका ॥

८८

[कान्हरो

मदनमोहन लिखि पठई मिलन कों
तैं तो फूली-फूली डोलै सौंने सदन में ।
मेरे जानि त्रिभुवन-पद आयौ मेरी आली !
ऐसौ कछु देखियतु आनँद वदन में ॥
अंजन की रेखा राजै, कुच-विच चित्र साजै,
ऐहें[1] वेली रेली हेली उचित अदन में (?)।
अरवराय प्यारी देखियतु ऐसी भारी सकुंवारी
हंस गति भूल्यौं, नूपुर-नदन में ॥
गोवर्धनधारीलाल, तोही सों रति कौ ख्याल,
अधर कौ मधु भावै सुंदर रदन में ।
'छीत-स्वामी' स्यामा स्याम, दोऊ अति अभिराम
मोतिनि कौ चौक पूर्यौ लेपन चँदन में ॥

1 अरु अति वेली नेली रुचिर रदन में (हि. वध २३।१)

युगलस्वरूप–वर्णन–

८९

[

गोवर्धन गिरिधर ठाढे लसत ।
चहुंदिसि धेनु धरनी धावति तब नव मुरली मुख बरसत ॥
मोरमुकुट, बनमाल मरगजी, सीस कुसुम कछु खसत ।
नव उपहार लिऐं वल्लव-तिय चपल दृगचल हसत ॥
'छीत-स्वामी' बस कियौ चहत हैं, संग सखा बिलसत ।
झूठे इत उत फिरि आवत हैं श्रीविट्ठल–हृदै वसत ॥

९०

[पूर्वी

आधी-आधी अँखियनि चितवति प्यारी जू
आधौ-आधौ मन भयौ जात गिरिधर कौ ।
आधे मुख घूंघट अर्ध चंद्रमा,
आधे-आधे वचन कहति रँग-रस भीने
आध घरी हू न छिनु रहत निदर कौ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल,
याही तें रतिपति लाग्यौ है झर कौ ॥

९१

[सारंग

कुंज-महल प्यारी-सँग बैठे लाल करत रँग,
अधर धरें मुरली स्याम सारँग सुर बजावै ।

अवघर विकट तान लेत सप्त सुर बँधान,
उपजावत मान, विविध भाँति रस बढावै ॥
मंद सुगंध वहत पवन, सुंदर सुखद भवन
रीझि राधे पिय के संग मधुर-मधुर गावै ।
'छीत-स्वामी' गिरिवरधर मगन भए आँकौं भरत,
सुख-स्वाद इहै समै कौ कहत न बनि आवै ॥

९२

[विहागरो

पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट, स्यामा स्याम विराजत आज ।
फूले फूल सेत पीत राते, मधुप-जूथ आए मधु-काज ॥
तैसिय छिटकि रही उजियारी, झलमलात झाँई उडु-राज ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर कौ यह सुख निरखि हँसे विट्ठल महाराज ॥

९३

[अडानौ

बैठे कुंज-भवन में दोऊ गिरिधर राधा प्यारी ।
अरस-परस विलसत मुख परसत, दरसत घन में छटा री ॥
अतिरस मत्त भरे मिलि गावत रीझि रिझावतताननि प्यारी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधारी मोहन रसबस भए पुलकि भरत
अँकवारी ॥

९४

[मलार

सुरँग भूमि हरियारी तापर नितंत बूड सुहाई,
इंद्र-धनुष मानों अरुन मेह सों।
तैसेई घुमडे घन करत सोर
और तैसेई बरसें थोरी-थोरी बूंदें
तैसेई नाचत मोर मञ्जु नेह सों॥
वृंदावन सघन कुंज गिरिगह्वर विहरत
स्याम-सँग वृषभानु-कुवरि दामिनी-सम देह सों।
'छीत-स्वामी' सब सुख-निधान गोवर्धन प्रभु कों
मघवा गनत अति ही सनेह सों॥

९५

[ईमन

विविध कुसुम-भार नमित अमित द्रुम,
कनक बरन फल फलित
ललित सौरभ वृंदावन माँहि।
मधुप-टोल झंकार करत और स्थल-जल
सारस, हंस विविध कुलाहल ताँहि॥
जमुना-तीर भीर सुरभीनि की
आसपास ब्रज जुवति-मण्डली,
मदनमोहन ठाढे कल्पद्रुप की छाँहि।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन, तिनके मध्य
राधिका के कंठ दिए बाँहि॥

आसक्ति-वचन-

(सखी-प्रति)

९६

[कल्याण

माई री ! नंद-नंदन मेरौ मन जु हरयौ ।
खरिक दुहावन जात रही हौं
मोतन मुसिकनि ना जानौं कहा करयौ ॥
ता छिनु तें मोहिं कछु न सुहाइ री ! हिय में आइ परयौ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर मिलई तुम्हें हिग्दैई मांझ धरयौ ॥

९७

[आसावरी

मेरे[1] नैननि इहै बानि परी ।
गिरिधरलाल-मुखारविंद-छबि छिनु-छिनु पीवत खरी ॥
पाग सुदेस लाल अति सोहति मोतिनि की दुलरी ।
हरि-नख उरहिं विराजत मनि-गन-जटित कंठ कठसिरी ॥
'छीत-स्वामी' गोवर्धनधर पर वारौं तन मन री !
विट्ठलनाथ निरखिके फूलत, तन सुधि सब बिसरी ॥

---

१ 'मेरी अँखियनि यही टेक परी०' कुंभनदास का एक पृथक् पद है ।
(देखो कूंभनदास पद सं० २१६ काकरोली प्रकाशन)

९८

[काफी

अरी ! हौं स्याम-रूप लुभानी ।
मारग जात मिले नँद-नंदन तन की दसा भुलानी ॥
मोरमुकुट सीस पर बाँकौ, बाँकी चितवनि सोहै ।
अँग-अँग भूषन बने सजनी ! जो देखै सो मोहै ॥
जब मोतन मुरिके मुसिकाने तब हौं छाकि रही ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर की चितवनि जात न कछू कही ॥

९९

[काफी

अरी ! हौं मोही नंद के लाल ।
बंसीवट जमुना-तट कुंजनि वेनु बजाइ रसाल ॥
साँवरी सूरति माधुरी मूरति, तिलकु बन्यौ बिच भाल ।
मोर-चंद्रिका सीस बिराजित पाग बनी अति लाल ॥
दुलरी कंठ बिराजित सीपज और बनी मनि-माल ।
रूप सरोवर साजें आवत सुख पावति ब्रज-बाल ॥
बाँकी चाल बाँके हैं आपुन बाँके नैन बिसाल ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर ब्रज आवत गजगति, चाल मराल ॥

१००

[सोरठ

गिरिधरलाल के रँग राँची ।
तन सुधि भूलि गई मोकों अब कहति हों तोसों साँची ॥
मारग जात मिले मोहिं सजनी ! मोतन मुरि मुसिकाने ।
मन हरि लियो नंद के नंदन चितवनि-मांझ बिकाने ॥
जा दिन तें मेरी दृष्टि परे सखि ! तब तें रह्यौ न जावै ।
ऐसो है कोऊ हितू हमारौ 'छीत' स्वामी सों मिलावै ॥

१०१

[जौनपुरी

अब मोहिं नंदगांउ की राधेजू ! गैल बताइ ।
रूप रसिक अँग रंग देखिके मो मन रह्यौ है लुभाइ ॥
कोटि इन्दु मुख अमल देखिके तन की सुधि बिसराइ ।
तातें नही गैल मोहिं सूझत मदन अंग रह्यौ छाइ ॥
रति कौ अति दुख देत मीन-सुत ताकौ करों उपाइ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन स्याम कों देखि-देखि मुसकाइ ॥

१०२

[मालवगोरा

गिरिधरलाल मनोहर मूरति निरखि नैन चित रह्यौ लुभाइ ।
मारग जात मिले मोहिं सखि ! डग इत धरयो न जाइ ॥
कहा कहों ! मुख चंद की सोभा देखि नीकें चली सुभाइ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर कौ संगम उर सों लागि-लागि मुसिकाइ

१०३

[नट

नैननि भाँवते देखे री ! पिय नव नंदलाल ।
मुरली अधर धरें, सुखद मन हरें, गावत हैं री ! निपट रसाल ।।
लटपटी पाग बनी, सेहरौ चंपक छबि सोभा देत अर्ध भाल ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरनलाल पर तन मन वारत अंग न सँभाल ।।

१०४

[आसावरी

नैननि निरखें हरि कौ रूप ।
निकसि सकत नही लावनि–निधि तें मानों पर्यौ कोउ कूप ।।
'छीत–स्वामी' गिरिधरन विराजित नख–सिख रूप अनूप ।
बिनु देखें मोहिं कल न परत छिनु सुभग बदन छबि–जूप ।।

१०५

[नट

प्रीतम प्यारे ने हौं मोही ।
नेंकु चितै इत चपल नैन सों कहा कहौं ? हौं तोही ।।
कहा री ! कहौं मोहिं रह्यौ न भावै जब देखौं चित गोही ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन निरखिके अपुनी सुधि हों खोही ।।

१०६

[भैरौं

भई भेट अचानक आइ ।
हौं अपने गृह तें चली जमुना वे उत तें चले चरावन गांइ ।।
निरखत रूप ठगौरी लागी उत कों डग भरि चल्यौ न जाइ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन कृपा करि मोतन चितए मुरि मुसिकाइ ।।

१०७

[अडानो

मो तन चितै–चितैके सजनी ! मेरौ मन गोपाल हर्यौ ॥
निरखत रूप ठगौरी-सी लागी कछु न सुहाइ,
तब तें जिय उनही हाथ पर्यौ ॥
चपल नैन कुटिल अनियारे दै करि सैन मोहिं, गवन कर्यौ ॥
'छीत-स्वामी' गिरिधरन मिलैं क्यों ? सो उपाय करु,
मो तें रहि न पर्यौ ॥

१०८

[नट

मुरली सुनत गई सुधि मेरी ।
गृह-कारज सब भूलि गयौ मोहिं सपति करति हौं तेरी ॥
इक–टक लागि सुनति स्रवननि-पुट जैसें चित्र चितेरी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर मन करख्यौ इत–उत चलै न फेरी ॥

१०९

[सोरठ

मेरौ मनु हर्यौं गिरिधरलाल ।
सुनु री सखी ! कहा कहौं तोसौं ? जे कीन्हे हरि हाल ॥
हौं अपने गृह मांग सँवारति आइ गए तिहि काल ।
पाछें तें मोहिं गही अचानक दृढ करिके गोपाल ॥
हौं सकुची मन ही मन अपुने कौन परी यह चाल ? ।
जियें हरप, मुख कहति री सजनी ! 'छाँडौ न, जसोमति बाल !'
इतनी कहत छाँडि गए मोहन छुइके मेरे गाल ।
'छीत' स्वामी बिनु भई बावरी सुधि नहीं ' तन बेहाल ॥

११०

[आसावरी

मेरो अँखियनि देख्यौ गिरिधर भावै ।
कहा कहों तोसों सुनि सजनी ! उत ही कों उठि धावै ॥
मोर-मुकुट काननि कुंडल लखि, तन गति सब विसरावै ।
बाजूबंद कंठमनि भूषन निरखि-निरखि सचु पावै ॥
'छीत-स्वामी' कटि छुद्रघंटिका नूपुर पद हिं सुहावै ।
इह छवि बसत सदा विट्ठल-उर मो-मन मोद बढावै ॥

१११

[ईमन

हरि के वदन पर मोहि रही हौं ।
निरखत रूप, ठगौरी लागी तन सुधि भूली री ! मौन गही हौं ॥
वे मोहिं विवस जानि अँक में भरी, जब सुधि आई कही हौं ॥
'छीत-स्वामी' गिरिधरन छवीले ! बिछुरत बिरहानल सों दही हौं ॥

११२

[नट

प्रीतम प्रीति तें बस कीनों ।
उर-अंतर तें स्याम मनोहर ने कुहु जान न दीनों ॥
सहि नहिं सकति बिछुरनो पल भरि भलौ नेमु यह लीनों ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्ति-कृपा-रस भीनों ॥

११३

[ललित

(प्रभु प्रति)

प्रीतम ! कहां जु चले जादू करिके ।
रूप दिखाइ ठगौरी कीन्ही छांडि गए मोहिं छलवलि के ।
वृंदावन की कुंज-गलिनि में छांडि गयौ मोहिं छलवलि के ।+
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल वस जु परी गिरिवर के ॥

११४

[अडानो

(प्रभु वचन)

ठाढी ह्वै सुनु धौं री ? गोरी ग्वालि !
तू कत जाति मो मन हरिकैं ?
कमल-पत्र-से वडे नैन, मोतन
निहारि टेढ़ी चितवनि करिकैं ॥
सुभग कपोलनि छूटि रही लट
पंकज पर मानों आए मधुप अरिकै ॥
'छीत-स्वामी' गिरिधरन छवीले
लई लगाइ कंठ भुज धरिकैं ॥

+ इस पद का शुद्ध पाठ नहीं मिला ।

आसक्ति की अवस्था–

११५

(पूरवी

आगे कृष्ण, पाछें कृष्ण, इत कृष्ण उत कृष्ण
जिन देखौं तित कृष्ण--मई ।
मोर–मुकुट धरें कुंडल करन भरे
मुरली मधुर धुनि तान नई ॥
काछिनी काछें लाल, उपरेना पीत पट
तिहि काल सोभा देखि थकित भई ।
'छीत–स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
निरखत छबि अँग–अंग छई ॥

भक्त–प्रार्थना–

११६

(ईमन

प्रानप्यारे[1] ! कुवँर नेंकु गाइये ।
आनन कमल अधर सुंदर धरि मोहन ! बेनु बजाइये ॥
अमृत हास मुसकनि बलैयाँ लेउं नैननि की तपनि बुझाइये ।
परम दुसह बिरहानल व्यापत तन सब जरत जुडाइये ॥
उभय कर कमल हृदय सों परसिके बिरहिनि मरत जिवाइये ।
'छीत–स्वामी' गिरिधर तुम–से पति पूरन भाग जु पाइये ॥

---

१ कुवँर नेकु गाइये (पाठभेद)

२१७

(गौरी

अहो ! विधना ! तोपै अँचरा पसारि मांगौं
जनमु-जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ ।
अहीर की जाति, समीप नंद-घरु
घरी-घरी घनस्याम हेरि-हेरि हँसिबौ ।
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिनि में
झकझोरनि अंग-अँग कौ परसिबौ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल
सरद-रैनि रस-रास कौ बिलसिबौ ॥

वेणुनाद-

२१८

(केदारो

मधुर मोहनमुख हिं मुरली बाजै।
सुनहि किन कान दै सुघर ब्रज-नागरी
राग केदारौ, चर्चरी ताल साजै ॥
सप्त सुर-भेद बँधान तुअ नांउ लै
करत गुन-गान मिलि, तुअ हित काजै ।
'छीत-स्वामी' नवल लाल गिरिधरन कौं
वेगि मिलि भेटि, मन्मथ-दाह दाजै ॥

११९

[श्री

श्रीराग में कान्ह मुरली बजावै ।
सप्त सुर-भेद अवघर तान विकट सों गति
मधुर धरि मनसिज-मोद उपजावै ॥
बजत नूपुर धरत चरन अवनी,
चतुर ताल चर्चरी सों मनसि मन लावै ।
'छीत-स्वामी' नवल लाल गिरिवरधरन
गोप-बालक-संग बन तें आवै ॥

आवनी-

१२०

[गौरी

आवै माई ! नंद-नँदन सुख-दैनु ।
संध्या समै गोप-बालक-सँग आगें राजत धैनु ॥
गोरज-मंडित अलक मनोहर, मधुर बजावत बैनु ।
इहि विध घोष मांझ हरि आवत सब कौ मन हरि लैनु ॥
कियौ प्रवेस जसोदा-मंदिर जननी मथि प्यावति पय-फैनु ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन-बदन-छवि निरखि लजानौ मैनु ॥

१२१

(अडानो

आजु गोपाल गांइ पाछैं, नटवर कौ भेष काछैं
आवत बन तें हौं निरखि देह-दसा भूली ।

अधर मधुर धरें वेनु, गावत अडानौ राग
नूपुर झनकार करत, यह छवि निहारत नैन
मन गति भई लूली ॥

मोतिनि के हार गरें, गुंजामनि-माल धरें,
ऐसी को नारि जो देखत व्रत तें न टरै, मेरे जीवन-मूली ।
'छीत-स्वामी' गिरिवरधरन कोटि मदन-मान हरन
सब कौ चितु चोरि मेटी बासर-विरह-सूली ॥

१२२

(बिभास

आजु किसोर कुंवर कान्ह देखि री ! देखि आवत
गावत, नैन चैन पावत हैं सकल अँग-अंग ।
मुरली कुनित सुभग बदन, मदन-मोचन, लोल लोचन,
मधुप-टोल, मधुरे बोल गुंजत सँग-संग ॥
चरन नूपुर, कटि मेखला, रति-रन रस-रंग स्याम
कनक कपिस अंबर, संबर करत मान-भंग ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन, तन के संताप-हरन,
मेटि मेटि विरह-वेदन जीति सौ अनंग ॥

१२३

(पूरवी

आगें गांइ पांछे गांइ, इत गांइ, उत गांइ,
गोविंद कों गाँइनि में बसिबोई भावै ।
गांइनि के संग धावै, गांइनि में सचु पावै
गांइनि की खुर-रज अंग लपटावै ॥

गांइनि सों व्रज छायौ, वैकुंठ विसरायौ,
गांइनि के हित गिरि कर लै उठावै ।
'छीत-स्वामी' गिरिधारी, विट्ठलेस वपु-धारी,
ग्वारिया[1] कौ भेषु धरैं गांइनि में आवै ॥

१२४

(गोरी

वन तें आवत स्याम गांइनि के पाछै
मुकुट माथे धरें, खौरि चंदन करे,
वनमाल गरें, भेषु नटवर काछैं ॥
करत मुरली-नाद मोहत अखिल विश्व,
धरत धरनी चरन मंद-मंद पाछैं ।
'छीत-स्वामी' नवल लाल गिरिवरधर-रूप देखि
मोहित सब व्रज की वाल, गोप-वधू आछैं ॥

१२५

(नट

वन तें आवत मोहनलाल ।
सीस विराजित जटित टिपारौं, नटवर-भेषु गोपाल ॥
ग्वाल-मंडली-मध्य विराजित कूजत वेनु रसाल ।
सुनत स्रवन गृह-गृह के द्वारे आईं सब ब्रजवाल ॥
निरखि सरूप स्याम सुंदर कौ मिटी विरह की ज्वाल ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन रसिकवर मुसकि चले तिहि काल ॥

---

१ गोपाल (वध ११)

१२६

(अडानो

ब्रन तें गोपाल आवै गाइनि के पाछैं पाछे,
गोरज मंडित कपोल सोहत हैं माई !
मोर-मुकुट सीस धरें, मुरली अधर करें,
बनमाल सोहै गरें, काननि कुंडल झलकाई ॥

ठुमुकि-ठुमुकि चरन धरत, नूपुर झनकार करत,
रतिपति-मन हरत, बाढ़ी सोभा अधिकाई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधारि जुवजन मोहे निहारि,
कियौ प्रवेस सिंहद्वारि, जननी बलि जाई ॥

१२७

(नट

गाइनि के पाछें पाछें, नटवर-काछैं काछैं
मुरली बजावत आवत मोहन ।
अति ही छबीले पग, धरनी धरत डग,
गति उपजति मग लागें जिय सोहन ॥

खरिक निकट जानि, आगें धाए घनस्याम
ठठकि-ठठकि गौएँ लागीं सब गोहन ।
'छीत-स्वामी' गिरिधारी, विट्ठलेस बपु-धारी
आवत निरखि-निरखि गोपी लागीं सब जोहन ॥

१२८

(नट

गिरिधर आवत बन तें री ! सोहै ।
पीत टिपारौ सीस बिराजित, मनसिज कौ मन मोहैं ॥
गाँइनि के पाछें-पाछें आवत हैं चलि री ! दिखाऊं तोहैं ।
'छीत स्वामी' सब कौ चित चोरत मंद मुसकि जब जोहैं ॥

१२९

(गौरी

नंद-नँदन गो-धन सँग आवत
सखा-मंडली-मध्य बिराजित गौरी राग सरस सुर गावत ॥
मोर-चंद्रिका मुकुट बन्यौ सिर, मंद अधर धरि मुरली बजावत ।
गृह-गृह प्रति जुवति भई ठाढीं निरखि विरह की सूल मिटावत ॥
सिंघ-पौरि पे जाइ जसोदा सुत-मुख हेरि हियें सुख पावति ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरनलाल-कर अपने कर धरि उर सों
लगावति ॥

१३०

(गौरी

मेरे री ! मन मोहन माई !
संझा समै धेनु के पाछे आवत हैं सुखदाई ॥
सखा-मंडली मध्य मनोहर मुरली मधुर बजाई ।
सुनत स्रवन तन की सुधि भूली, नैन की सैन जताई ॥
कियौ प्रवेस नंद-गृह-भीतर जननी निरखि हरषाई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर के ऊपर सरबसु देत लुटाई ॥

१३१

(गौरी

मोहन नटवर-वपु काछैं आवत गो-धन संग लिऐं लटकत।
देखन कों जुरि आईं सबै त्रिय मुरली-नादस्वाद-रस गटकत ॥
करत प्रवेस रजनी-मुख ब्रज में देखत रूप हृदै में अटकत।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन लाल-छबि देखत ही मन कहु
अनत न भटकत ॥

१३२

(भैरव

सुमिरि मन गोपाललाल सुंदर अति रूप-जाल
मिटि है जंजाल सकल निरखत सँग गोप-बाल ॥
मोर-मुकुट सीस धरैं बनमाला सुभग गरैं,
सब की मन हरैं, देखि कुंडल की झलक गाल ॥
आभूषन अंग सोहिं, मोतिनि कौ हार पोहिं
कंठसिरी दृग मोहै गोपी निरखति निहाल ॥
'छीत-स्वामी' गोवर्धन-धारी कुंवर नंद-सुवन।
गाइनि के पाछैं-पाछैं पग धरत हैं लटकीली चाल ॥

आरती-

१३३

(कान्हरो

आरती करति जसुमति मुदित लाल कों।
दीप अद्भुत जोति, प्रगट जगमग होति
वारि वारनि फेरि अपने गोपाल कों ॥

१२८

(नट

गिरिधर आवत बन तें री ! सोहैं ।
पीत टिपारौ सीस बिराजित, मनसिज कौ मन मोहैं ॥
गाँइनि के पाछें-पाछें आवत हैं चलि री ! दिखाऊं तोहैं ।
'छीत स्वामी' सब कौ चित चोरत मंद मुसकि जब जोहैं ॥

१२९

(गौरी

नंद-नँदन गो-धन सँग आवत
सखा-मडली-मध्य बिराजित गौरी राग सरस सुर गावत ॥
मोर-चंद्रिका मुकुट बन्यौ सिर, मद अधर धरि मुरली बजावत ।
गृह-गृह प्रति जुवति भई ठाढीं निरखि बिरह की सूल मिटावत ॥
सिंघ-पौरि पे जाइ जसोदा सुत-मुख हेरि हियें सुख पावति ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरनलाल-कर अपने कर धरि उर सों लगावति ॥

१३०

(गौरी

मेरे री ! मन मोहन माई !
संझा समैं धेनु के पाछैं आवत हैं सुखदाई ॥
सखा-मंडली मध्य मनोहर मुरली मधुर बजाई ।
सुनत स्रवन तन की सुधि भूली, नैन की सैन जताई ॥
कियौ प्रवेस नंद-गृह-भीतर जननी निरखि हरषाई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर के ऊपर सरबसु देत लुटाई ॥

१३१

(गौरी

मोहन नटवर-वपु काछें आवत गो-धन संग लिऐं लटकत।
देखन कों जुरि आईं सबै त्रिय मुरली-नादस्वाद-रस गटकत ॥
करत प्रवेस रजनी-मुख व्रज में देखत रूप हृदै में अटकत।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन लाल-छवि देखत ही मन कहु
अनत न भटकत ॥

१३२

(भैरव

सुमिरि मन गोपाललाल सुंदर अति रूप-जाल
मिटि है जंजाल सकल निरखत सँग गोप-बाल ॥
मोर-मुकुट सीस धरें बनमाला सुभग गरें,
सब को मन हरें, देखि कुंडल की झलक गाल ॥
आभूषन अंग सोहें, मोतिनि की हार पोहें
कंठसिरी दग मोहें गोपी निरखति निहाल ॥
'छीत-स्वामी' गोवर्धन-धारी कुंवर नंद-सुवन।
गांइनि के पाछें-पाछें पग धरत हैं लटकीली चाल ॥

आरती-

१३३

(कान्हरो

आरती करति जसुमति मुदित लाल कों ।
दीप अद्भुत जोति, प्रगट जगमग होति
वारि वारति फेरि 'अपनें' गोपाल कों ॥

बजत घंटा ताल, झालरी संख-धुनि
निरखि व्रज-सुंदरी गिरिधरन लाल कौं।
भई मन में फूलि, गई सुधि-बुधि भूलि
'छीत-स्वामी' देखि जुवति-जन-जाल कौं॥

१३४

(सारंग

आरती करति जसुमति निरखि ललन-मुख
अति ही आनंद भरि प्रेम भारी॥
कनक थारी जटित रत्न, मुक्ता खचित,
दीप धरि हुलसि मन वारि वारी॥
बजत घंटा ताल, वीन झालरी संख
मृदंग मुरली विविध नाद सुखकारी।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन लाल कौं हेरि
सकल व्रजजन मुदित देत तारी॥

मान—

(सखी-वचन)

१३५

(सारंग

चलि री! वेगि वृंदावन बोलत बनवारी।
अति आतुर बैठे आज, तजि सब आपुनो समाज
करत नाँहिने काज कछु तेरे हित प्यारी!

कुंज-सदन सरस ठौर त्रिविध पवन बहत जहाँ
सुमन-सेज स्याम सुंदर, हाथ निज सँवारी।
चंदवदनी राधे नारि ! छिनु-छिनु मग चाहत तेरौ
'छीत-स्वामी' भयौ चकोर लोचन गिरिधारी।

१३६

[बिहागरो

प्यारी ! मेरे कहें तू मानि ।
तेरी सौं पिय ओहोत खिदत है कौन परी इहि बानि ॥
नंद-नँदन अपुनो हितकारी तासों कहा गुमानि ?
'छीत-स्वामी' गिरिधरन लाल सों मिलि पहिली पहिचानि ॥

१३७

[बिहागरो

मेरौ कह्यो तू मानति नाँहिनै
कौन सुभाउ परयो री नागरि !
हिल-मिलि चलि गिरिधरन लाल सों
वे गुन-निधि तू गुन की सागरि ॥
हाथ जोरि तेरे पैयाँ लागति
उठि चलि वेगि रूप की आगरि ।
'छीत-स्वामी' तो बिनु अति व्याकुल
तैं उन बिनु व्याकुल है उजागरि !

१३८

[बिहागरो

सजनी ! आजु गिरिधरलाल तो–हित रची सेज बनाइ ।
वेगि मिलि तजि मान प्यारी ! कहति हौं समुझाइ ॥
अति ही आतुर नंद–नंदन परत तेरे पांइ ।
'छीत' स्वामी संग बिलसहु ह्वै है सब सुखदाई ॥

१३९

[केदार नट

*मिलहि नागरी ! नवल गिरिधर सुजान सों ।
कुंज के महल में रसिक नँदलाल कों
भेटि अंक, मन करि बहुत सनमान सों ॥
गीत में राग केदार चर्चरी ताल,
करत पिय गान, रचि तान बंधान सों ।
'छीत–स्वामी' सुघर, सुघर सुंदरि ! रीझि
रिझवत सुघर भेद गति ठान सों ॥

१४०

[सारंग

चलि सखि ! स्याम सुंदर तोहिं बोलत ।
कुंज-महल में बैठे मोहन तेरो रूप उर तोलत ॥
तो-बिनु कछु न सुहात है लालहिं तू कत गहरु लगावै ?
मेरे कहें वेग चलि भामिनि ! जो तेरे जिय भावै ॥
नंद–नँदन सों प्रीति निरंतर सुनत वचन उठि धाई
'छीत–स्वामी' गिरिधर पै नागरी, हेत जानिके आई ॥

---

* इसी तुक से (.सुजानसों) चतुर्भुजदास का एक पृथक् पद है ।

१४१

[मालव गोरा

बोलत तोहिं नंद के नंदन, चलि मृगनैनी ! विलपु न लाई ।
कुंज-सदन बैठे मग चितवत तो—विनु उनहीं कछु न सुहाई ॥
मारुत-सुत-पति-रिपु-पति की रिपु ताकी तपत तन सही न जाई ।
तरु-पल्लव डोलत अरु चौंकत, तुअ आगमन जानि उठि धाई ॥
अति अतुरता जानि पीय की सँग दूती के चली सुहाई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर कौ संगम उर सौं लागि मुसिकाई ॥

१४२

[सारंग

मग तेरौ जोवत मनमोहन ।
नवल निकुंज-धाम पै सजनी ! चलि मेरे तू गोहन ॥
तो-विनु नेकु सुहात न उनकों सैन जनावत भौंहन ।
सजि तन साज सकल व्रज-सुंदरि ! रूप अनूपम सोहन ॥
दूती-संग चली उठि नागरी नंद-नँदन पै आई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन-कंठ लगि मनसिज-विथा गँवाई ॥

१४३

[केदार नट

मिलहि किन नागरी ! रसिक गिरिधरन सौं ।
साजि भूषन वसन कनक तन सुंदरी !
वेगि चलि मेटि पिय, ताप मनहरन सौं ॥

सघन वन-कुंज में महल तुव ध्यान धरि
पिय निहारत सखी ! मार-जुर-जरन सों ।
चली सुनि वचन, हित मानि सहचरि-संग
'छीत-स्वामी' हिलिमिलि सकल सुख-करन मों ।।

१४४

[सारंग

मानिनी कौ मान देखि आतुर गिरिधारी री ।
उठि आए आपुन तहाँ जहाँ मानवती प्यारी री ॥
ललिता कहै लाडिली ! तू करि ले बधाई री ।
आरती करि आदर सों तेरे आए कन्हाई री ॥
ब्रह्मा सिव सुर सुरेस सोई जाके चेरे री ।
सो तुअ प्रनिपात करै मान-जीवन तेरे री ॥
मृगनैनी नैन खोलि देखि लाल विहारि री ।
'छीत-स्वामी' मोहन कों भरिलै अँकवारि री ॥

१४५

[बिहागरो

मोसों रूसति है री प्यारी ! मेरे तौ तुम ही तन मन धन ।
मोहनलाल कहत राधा सों मेरें तौ तुम ही सों मितपन ।।
अब कबहूं जिनि मान करै री ! यह कहि-कहि लागत उर मोहन ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर अंतरगत मोद रहे नागरि के गोहन ॥

१४६

[हमीर कल्यान

नंद-सुत तोहिं बोलत मृगज-लोचनी !
निविड कुंज-निकेत गुहत तेरे हितु दाम
चलि-चलि वेग काम-दुख-मोचनी ॥
सुनत दूती-वचन चली उठि संग ही
अति निपुन नागरी, पिय मनसि-रोचनी ।
'छीत-स्वामी' रसिकलाल गिरिवरधरन-
संग विलसी निसा, नाक सुक-चोंचनी ॥

१४७

[विहागरो

दूती के संग चली उठि मानिनी, कुंज-सदन गिरिधर पिय पहियाँ ।
वहुत जतन करि मनाई भामिनी पकरि लई सहचरि की बहियाँ ।
गई वहाँ जहाँ हरि मग जोवत, कहति सखी सों नहियाँ-नहियाँ ॥
'छीत-स्वामी' उर लाइ लई हँसि, नंद-नँदन वंसी वट-छहियाँ ॥

परस्पर-संमिलन-

१४८

[कान्हरो

आजु राधिका प्रवीन स्याम-संग कुंज-सदन
विलसति मन हुलसि-हुलसि नवल नागरी ।
नव सत सिंगार सजें रूप-रासि अंग-अंग
भूषन नव जटित लाल, जलज-मांग री ॥

पिय अँस धरें बाहु, निरखत जिय में उछाहु
परसत कर गंड बाहु मानि भाग री ।
'छीत' स्वामिनी चिचित्र गिरिवरधर लाल जुगल
पीवत अधर मधुर-मधुर कंठ लाग री ॥

१४९

[कान्हरो

आजु प्यारी करि सिंगार बैठी अति आनंद में
नील सारी पहिरे तन, लाल लसै अँगियाँ ।
तिहि समै आए पिय अचानक ही पाछे तें
चौंकि उठी प्यारी तब बाढ़ी रँग-रँगियाँ ॥
आतुर व्है परसत कुच प्यारी उरसति उत
मैन नैन मूंदि भई ऊपर तँग-तंगियाँ ।
गोवर्धनधारी लाल कीन्ही रस ही में बस
'छीत' स्वामी अपुने कर गुहे फूल मँगियाँ ॥

१५०

[सारग

कुंज विहरत स्याम कुंवरि वृषभानुजा
प्रेम पुलकित अंग राग-रागी ।
तन पुलक, मन पुलक, जोरि उर सों उर हिं
रहत लपटाइ दोऊ भाग भागी ॥
कुसुम-सैया रचित, विविध सुमननि खचित
भए आरूढ अति प्रेम पागी ।
'छीत' स्वामी चतुर, चतुर वर नागरी
गिरिधरन चूमि वर कंठ लागी ॥

१५१

[विभास

अति हि कठिन कुच ऊंचे दोउ तुंगनि-से
गाढे उर लाइके सुमेटी कान हूक ।
खेलत में लर टूटी, उर पर पीक परी
उपमा कों बरनत भई मति मूक ॥
अधर-अमृत रस उर तें अचवायौ
अंग-अंग सुख पायौ गयौ दुख टूक ।
'छीत-स्वामी' गिरिधारी राज लूट्यौ मन्मथ
वृंदावन-कुंजनि में मैं हू सुनी कूक ॥

१५२

[सारंग

नंद-नंदन सँग राधिका नागरी ।
करत रति-केलि अति कुंज के सदन में
लाइ हिय सों हिय रूप की आगरी ॥
मिटो मन्थन-पीर, रचित भूषन चोर
मुदित मन में भई मानि बड भाग री ।
'छीत-स्वामी' नवल लाल गिरिधरन पिय
जानिके स्रमित उठी उर सों लाग री ॥

१५३

[विहागरो

नद-नँदन-संग राधिका खेली।
कुंज के सदन अति चतुर वर नागरी
चतुर नागर मिले करत केली ॥
नील पट तन लसै, पीत कंचुकी कसै,
सकल अंग भूषननि रूप-रेली ।
परम आनंद सों लाल गिरिधरन के
हृदय सों लागि भुज कंठ मेली ॥
'छीत-स्वामी' नवल वृषभानु-नंदिनी
करति सुख-रास पिय-सँग नवेली ।
सहचरी मुदित मन जाल-रंध्रनि निरखि
मानि अपनो भाग कहि सहेली ॥

१५४

[विहागरो

राधा स्याम के सँग बनी ।
मृदुल सुखद पुज के ऊपर एकतमन सजनी ॥
अंग-अंग सों मिलिके गाढे नील कंचन तनी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन के संग सोहै और घनी ॥

१५५

[टोडी

मनमोहन नँद-नदन प्यारो प्यारी कुंज-महल में क्रीडत ।
उर सों उर मिलाइ करि गाढे अति मन मुदित परस्पर भीडत ।

आतुरता सों दोउ कुच लै कर कंचुकी सहित करनि सों मीडत ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर सँग विलसत देखि अनंग अंगमद पीडत ॥

१५६

[कान्हरो

स्यामा स्याम निकुंज-महल में, करत विहार दोऊ रंग-भीनें ।
प्यारी हित आनंद बढ्यौ जिय जबहीं
तब ही लाल कुच परसन कीनें ॥
उमगि-उमगि पिय के उर लागति,
वे ऊ उमगि भुज गहि भरि लीनें ।
अधर पान मिलि करत परस्पर दंपति कोटि-मदन-छबि छीनें ॥
रति विपरीत रची मनमोहन बिबिकर बाम पीठि पर दीनें ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन रसिक वर
कोक-कला बहु चतुर प्रवीनें ॥

शयन–

१५७

[बिहागरो

पौंढी पिय-सँग वृषभानु-कुमारी ।
निरखि वदन छबि नंद-नँदन के लागि कंठ सों प्रान-पियारी ॥
चरन चरन धरि भुजनि जोटिकै अधर-पान मधु करत सुधारी ।
'छीत-स्वामी' नवललाल गिरिधर पिय
कुंजन-पुंज केलि हितकारी ॥

१५८

[विहागरो

पौंढी श्रीवृषभानु-किसोरी नद-नँदन के संग ।
कुसुम-सेज अति मृदुल ताही पर जोरि रही अँग-अग ॥
अधर अमृत रस पीवति प्यावति छबि की उठत तरंग ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन रसिकवर प्यारी लई उछँग ॥

१५९

(विहागरो

पौंढे माई ? लालन गिरिवरधारी ।
कुज-महल में कुसुम-सेज पर सोहति सँग राधिका पियारी ॥
कंठ लागि भुज दिऐं सिरहानें अद्‌भुत छबि लागत अति भारी ।
मानों मिलि रही दामिनि घन सों
'छीत-स्वामी' भरि लई अँककारी ॥

सुरतान्त—

१६०

(विभास

आजु प्रभात निकुंज-सदन तें आवत लाल गोवर्धन-धारी
सँग सोहति वृषभानु-नंदिनी अटपटे भूषन रगमगी सारी ॥
सिथिल अंग, अलसात जँभात दोउ
झुकि-झुकि परत नींद-वस भारी ।
विगलित-माल हार मोतिनि के
पीक कपोल, अधर मसि कारी ॥
एसे बनै आवत पिय प्यारी ललिता निरखि गई बलिहारी ।
'छीत-स्वामी' मुसिकाइ चले घर गिरिधरलाल व्रज-जन-दुखहारी॥

१६१

(ललित

नवल लाल वृषभानु-दुलारी आवत कुंज-भवन तें भोर।
इत नव वनी मरगजी सारी पिय-उर माल रही बिनु डोर॥
आलस-वस अँसनि भुज धरि-धरि आवत अति छवि पावत।
मधुप-माल सौरभ बस गुंजत सुजस तिहारे गावत॥
वृषभानु-पुरा तन गई लाडिली नंद-सदन गए स्याम।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन रँगीले विलसे चारौं जाम॥

१६२

[विभास

नंद-नदन वृषभानु-दुलारी कुंज-भवन ते चले उठि प्रात।
अँसनि बाहु दिऐं जु परस्पर आलस वस अँग-अंग, जँभात॥
विलुलित माल मरगजी सारी गंडनि पीक नख-छत बनी सात।
'छीत-स्वामी' गिरिधर निसि विलसे
रति के चिन्ह लखि अति सकुचात॥

१६३

[बिलावल

पिय-सँग जागी वृषभानु-दुलारी।
अंग-अंग आलस जँभात अति कुंज-सदन तें भवन सिधारी॥
मारग जात मिली सखी औरें तब हीं सकुचि तन-दसा बिसारी।
'छीत' स्वामिनी सों कहति भामिनी!
तोहिं मिले निसि गिरिवरधारी? ॥

गंडनि पीक, भाल बिच चंदन परसि रह्यौ, उर नख-छत लागी।
आलस बस एँडाति जँमाति ब अधरनि दमन-छन दागी॥
'छीत-स्वामी' गिरिधरन मीत कों तो-सी जुवती बडभागी।
मोसों कहा दुरावति प्यारी! हौं तेरी चेरी हित-लागी॥

खंडिता-

१७०

[भैरव

आए हो भोर? उनींदे स्याम!
सकल निसा जागे प्यारी-सँग हारे हौ तुम रति-संग्राम॥
सिथिलित पाग, भाल पर जावक, हिये बिराजित बिन गुन माल।
कुमकुम तिलक, अलक पर सेंदुर, सुभग पीक सोभत दोउ गाल॥
कंकन पीठि गड्यौ उर नख-छत जानों घन-मांझ द्वैज कौ चंद।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन! भले तुम मोहिं खिझावत हो नँदनंद!।

१७१

[देवगंधार

भले तुम आए मेरे प्रात।
रजनी सुख कहुं अनत कियौ पिय! जागे सारी रात॥
झपि-झपि आवत नैन उनींदे कहा कहौं? यह बात।
ज्यौं जलरुह तकि किरन चंद की अति समित मुंदि जात॥
कहुं चंदन, कहुं बंदन लाग्यौ देखियतु सांवल गात।
गंगा सरसुति मानों जमुना अँग ही मांझ लखात॥
भली करी व्रत बोल निवाहे, मेरे गृह परभात।
'छीत-स्वामी' गिरिधर सुनि बातें बदन मोरि सकुचात॥

१७२

[ललित

मेरें आए भोर प्यारे ! रैनि कहाँ गवाँई ?
कौन तिया-सँग स्रम परे मोहन ! जानि परी चतुराई ॥
गरें हार बिनु-डोर बिराजित, नख-छत देत दिखाई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर वाही पै जावक पाग रँगाई ॥

१७३

[देवगधार

साँचे भए आए परभात ।
नंद-नँदन ! रजनी कहां जागे ? कहिये साँवलगात ! ।
पीक कपोलनि लगी तुम्हारें, जावक भाल लखात ।
उर हि बिराजित बिन-गुन माला, मो तन लखि सकुचात ॥
भली करी, अब तहीं पगु धारौ जहाँ बिताई रात ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर ! काहे कौं झूठीं सौंहें खात ॥

※

इति लीला-पद

प्रकीर्ण

*

श्रीमहाप्रभुजी–

१७४

(सारंग

श्रीवल्लभ–चरन–सरन आइ मब सुख तू लहि रे !
रसना गुन गाइ–गाइ दरसन परसाद पाइ
और काज त्यागि भागि वल्लभ–रति गहि रे !
रैनि-दिना चिंतत रहौं 'श्रीवल्लभ श्रीवल्लभ' कहौं
इन ही के रूप रंग इन ही रस बहि रे !
'छीत–स्वामी' गिरिवरधारी ! या ही रस रहौं भारी
चाहना चाहत जिय ! तो यही चाह चहि रे ! ॥

१७५

(कल्याण

श्रीवल्लभ के देखें जीजै ।
नख-सिख सुंदरता कौ सागर रूप-सुधा-रस नैननि पीजै ॥
वचन-माधुरी परम मनोहर भक्त जननि सुख दीजै ।
'छीत–स्वामी' श्रीलछमन-सुत के पद-पकज अपने उर लीजै ॥

१७६

(बिलावल

हौं तो श्रीवल्लभ की बलिहारी ।
स्रवननि कों वचनामृत सीतल है अन्तर दुखहारी ॥
नव निकुंज-मंदिर की सोभा नित्य विहार-विहारी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भव-भंजन, भयहारी ॥

१७७

(सारंग

श्रीवल्लभ श्रीवल्लभ श्रीवल्लभ मुख जाके ।
सुंदर नवनीतप्रिय, आवत हरि तिहि के जिय
जनम-जनम जप-तप करि कहा भयो, श्रम थाके ॥
मन वच अघ तूल-रासि दाहन कों प्रगट अनल
पटतर कों सुर, नर, मुनि नांहि न उपमा के ।
'छीत-स्वामी' गोवर्धनधारी कुंवर आनि मग्न
प्रगट भए श्रीविट्ठलेस भजन कौ फल ताके ॥

१७८

(सारंग

श्रीवल्लभनाथ को रूप कहा कहौं ?
प्रगटे हैं सब सुख के सागर ॥
लीला-भाव जो प्रगट जनावत
कीनों है सब जगत उजागर ॥
देखि-देखि जो यह निधि आई
गहौ जो चरन-सरन मन दृढ़ कर ।
'छीत-स्वामी' गिरिधर रस बरसत
अपने जीव पर अति करुनाकर ॥

श्रीगुसाँइजी-*

१७९

[विभास

विमद सुजस श्रीवल्लभ-सुत कौ
प्रात उठत नित अनुदिन गाऊं ।
कलिमल-हरन चरन चित धरिकै
उपजै परम सुख, दुख बिसराऊं ॥
भक्ति-भाव अरु, भक्तनि कौ रस
जानें मान तिनहिं कों ध्याऊं ।
'छीत-स्वामी' गिरिधारीजू के सुमिरत
अष्ट सिद्धि, नव निधि कों पाऊं ॥

१८०

(बिलावल

आपुन पे आपुन ही सेवा करत ।
आपुन ही प्रभु, आपुन सेवक आपुन रूप धरत ॥
आपुने धर्म, कर्म सब आपुने आपुनिय विधि अनुसरत ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्त-वच्छल भय-हरन ॥

* श्रीगुसाइजी के वहुत से पद जो वधाई में गाये जाते हैं, वर्षोत्सव में दिये गये हैं । तदतिरिक्त यहा संकलित हैं ।

१८१

[भैरों

जै जै जै श्रीवल्लभ-नंद, सकल कला श्रीवृन्दावन-चंद।
बानी वेद न लहै पार, सो श्रीठाकुर अक्काजी के द्वार॥
सेस सहस्र मुख करत उचार, व्रज जन-जीवन, प्रान-आधार।
लीला लै गिरि धार्यौ हाथ, 'छीत-स्वामी' श्रीविट्ठलनाथ॥

१८२

[बिहागरो

जे जे जन बिछुरे प्रभु तें ते अभैदान करन।
कासी में प्रभु पत्रावलंबन कीनों माया-मत हरन।
श्रीभागवत पुरान वेद मथि श्रीगोवर्धन-धरन॥
को कहि सकै गान गुन इनिके आगम निगम-बरनन।
'छीत-स्वामी' प्रभु पुरुषोत्तम निधि श्रीविट्ठलेस-सदन॥

१८३

[बिहाग

सदा श्रीगोवर्धन में स्थित्त।
सदा बिराजैं श्रीवल्लभ विट्ठल, महा महोच्छव नित्त॥
जग्य-भोक्ता जो जग्य करत हैं भक्त जननि के हित्त।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल लग्यौ रहत नित चित्त॥

१८४

[विहाग

श्रीविट्ठलप्रभु-नाम नौका तुरत हि पार लगाए री[1] !
देखौ-देखौ अद्भुत लीला अनाथ सनाथ कहाए री !
धनि धनि कहत सकल सुर नर मुनि सुजस चहूं दिसि छाए री !
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीबिट्ठल तन के ताप नसाए री !॥

१८५

(बिहाग

श्रीविठ्ठलनाथ नाम-रस अमृत पान सदा तू करि रे रसना !
जो तू अपुनौ भलौ चाहै तौ इहै बात मन धरि रे रसना !
या रस के प्रतिबंधक जेते उनि बातनि अनदरि रे रसना ।
हरि कौ सुजस निरंतर गावै जात विघन सौ टरि रे रसना ॥
बारंबार कहत मन ! तोसों या मारग अनुसरि रे रसना ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल आनँद हिरदै धरि रे रसना ॥

१८६

(सारंग

जगत-गुरू श्रीविठ्ठलनाथ गुसाँई ।
काहे कौं औरु गुसाँई कहावत उदर-भरन के ताँई ॥
धर्म आदि चारों पुरुपारथ सो इनि के घर माही ।
तुम्हारे चरन-प्रताप तेज ते त्रिविध तिमिर भजि जाही ॥
माला कंठ, तिलक माथे दै, संख चक्र ज्यों धराई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल-भक्ति (पद) पंकज की पाई ॥

---

१ उतारे री ? (पाठ भेद)

१८७

[कान्हरो

कहा कहों री ! आली ! तोसों श्रीविट्ठल प्रभु निपुन मवनि में ।
भगवद्भाव गुप्त रस अनुभव प्रगट कियो सब अपने जननि में ॥
इनको गुन गायौ, सुख पायौ, चित लायौ वल्लभ-चरननि में ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल करत जु केलि फिरत कुंजनि में ॥

१८८

[कान्हरो

तिहारी कृपा विट्ठलेस गुसाँई !
अपथ मारग तजे, भक्ति-मारग रुचि श्रीगिरिवरधर दई दिखाई ॥
तन मन प्रान समर्पन कीनों श्रीभागवत-विधि नई सिखाई ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल अगनित महिमा बरनी न जाई ॥

१८९

(रामकली

मोकों बल है दोऊ ठौर कौ ।
इक बल मोकों हरि-भक्तनि कौ दूजे नंद-किसोर कौ ॥
मन क्रम वचन इहै व्रत लीनों नाहिं भरोसौ और कौ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल श्रीवल्लभ सिरमौर कौ ॥

१९०

[नट

जीती फिरि सांवरे ने कहा कासी ?
तब वे रूप सुंदर सनमुख लै, अब पट दरसन-भय-नासी ॥
तब पुंडरीक-भेष धरि आए अब पंडितवाद-विनासी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल अब हैं गोकुल-वासी ॥

श्रीगिरिराजजी–

१९१

(विहाग

मोहिं भरोसौ श्रीगिरिराज कौ ।
कहा जु भयौ तन, मन, धन जोरे ? भक्ति विना कहा काज कौ ?
ऊंची मेंडी कौन काज की व्रज वसिबौ भलौ छाज कौ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल वल्लभ-कुल-सिरताज कौ ।।

श्रीयमुनाजी–

१९२

[रामकली

गुन अपार एक मुख कहाँ लौ कहिये ।
तजौ साधन, भजौ नाम जमुनाजी कौ
लाल गिरिधरन कौं तब ही पइये ॥
परम पुनीत प्रीति रीति की जानहिं
दृढ करि चरन कमल जो गहिये ॥
'छीत–स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल,
इहि निधि छाँडि कहाँ अब जइये ?

१९३

[भैरव

जै जै श्रीसूरजा कलिंद–नंदिनी ।
गुल्म, लता, तरु सुवास, कुंद कुसुम मोदमत्त–
भ्रमत मधुप, पुलिन सुरभि वायु मंदिनी ।।

हरि-समान धर्मसील, कांति सजल जलद नील
तट नितंब भेटति नित गति सुछंदिनी ॥
सिकता-गन मुकता मानों, कंकनजुत भुज तरंग
कमलनि उपहार लै पिय-चरन-बंदिनी ॥
श्रीगोपेन्द्र-गोपी-संग, स्रमजल-कन सिक्त अंग
अति तरंग निरखि नैन रस-सुफंदिनी ।
'छीत-स्वामी' प्रभु गिरिधर धनि-धनि आनंद कंद
श्रीजमुना दुरित हरति पाप, महा-आनंदिनी ॥

१९४

[रामकली

धाइके जाइ जो जमुना-तीरे ।
ताकी महिमा अब कहाँ लौं बरनिये जाइ परसत अति प्रेम नीरे ॥
निसिदिन केलि करत मनमोहन पिया लै जु भक्त की संग भीरे ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल. इनि-बिनु नेकु न धरत धीरे ॥

१९५

[रामकली

दोऊ कूल खंभ, तरंग सीढ़ी मानों
जमुना जगत बैकुंठ-निसैनी ।
अति अनुकूल कलोलनि के भरि
लियें जाति हरि के चरन-कमल, सुख दैनी ॥

जनम-जनम के पाप दूर करनी
काटति कर्म धर्म-धार छैनी ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरजू की प्यारी
साँवरे अंग, कमल-दल नैंनी ॥

१९६

[रामकली

ताके मुख जमुना यह नाम आवै ।
जाके ऊपर कृपा करें श्रीवल्लभ प्रभु
सोई जमुनाजी कौ भेद जानि पावै ॥
तन मन धन सबै लाल गिरिधरन कों
दैकें चरन परै, चित्त लावै ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविठ्ठल
नैननि प्रगट लीला दिखावै ॥

श्रीबलभद्रजी-

१९७

[सारंग

मांदल वाज्यौ री ! व्रजजन कें, प्रगटे श्रीबलराम ।
रोहिनी-कूंखि प्रगट पुरुषोत्तम व्रजजन-मन अभिराम ॥

जो जन विनय करत, दुख तिनके काटत हैं तिहि जाम।
टेरत कोउ जात तहाँ भाजे, और कछू नहिं काम॥
स्याम राम कौ भेद न जानत, करत जुदाई मन में।
'छीत-स्वामी' मुख सों कहा बरनों! आगि लगौ ता तन में॥

माहात्म्य–

१९८

[सारंग

बैठ्यौ तखत बखत आली! नंदराइ कौ वृंदावन रजधानी।
ब्रह्मा जाकौ ध्यान धरत इन्द्र सेना-नाइक
तीनि लोक जीति आप कोउ न अभिमानी॥
सिव-से करें विचार, नारद-से न पावे पार
ध्रुव ध्यान धरें सनकादि ग्यानी।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठलेस
भक्तजन मागें पाऊं इह टेक ठानी॥

१९९

[सारंग

सबनि ते हरिदासनि सों हेतु।
हरिदासनि के निकट बसत हैं, हरिदासनि में चेतु॥
हरिदासनि की महिमा जानत, हरिदासनि सुख देतु।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल, हरिदासनि की सेतु॥

विशेष–

२००

[केदार]

बिनती करत गहे धन बैंयाँ ।
वृंदावन तेरे बिनु सूनौं बसत तिहारी छैंयाँ ॥
मैं तो नंद गोप कौ छोरा कहत सबै नँदरैयाँ ।
'छीत-स्वामी' गिरिधरन साँवरे! परों पिया! मैं तेरे पैयाँ ॥ (?)

२०१

[गौरी

श्रीनाथ सुमिर मन! मेरे ।
भए निहाल सकल सचु पाए जा पर कृपा–दृष्टि करि हेरे ॥
जहाँ-जहाँ गाढ परति भक्तनि कों, तहाँ-तहाँ प्रगट पलक में फेरे ।
'छीत–स्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल पूरन करत मनोरथ तेरे ॥

इति प्रकीर्ण पद

*

'छीत-स्वामी' कृत पद–संग्रह

' छीत-स्वामी ' कृत पद-संग्रह

प्रतीक-अनुक्रमणिका

(१) प्रस्तुत अनुक्रमणिका में कोष्ठान्तर्गत प्रतीकें पाठान्तर की प्रतीकें हैं। प्रारंभिक रूपान्तर के परिचयार्थ दोनो स्थानों पर उनका देना उचित समझा गया है।

(२) बडे टाइप की प्रतीकवाले पद छीतस्वामी की वार्ता से सम्बन्धित हैं। तदर्थ विद्याविभाग से प्रकाशित ' अष्टछाप वार्ता ' तथा ' दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता ' देखी जा सकती है।

–x–

–x–